जैन भारती

वर्ष 54 • अंक 7 • जुलाई, 2006

With best compliments from :

Whenever You Drink

C.T.C., ORTHODOX & GREEN TEA

Think of us

Kokrajhar Tea Estate
Chikonmati Tea Estate
Daloabari Tea Estate
Banglabari Tea Estate

BIJNI DOOARS TEA COMPANY LIMITED
EASTERN DOOARS TEA COMPANY LIMITED

SHANTINIKETAN, 4th Floor
8, Camac Street, KOLKATA 700017

Consultants, Financiers & Agents :

M/s Panchiram Nahata
177, Mahatma Gandhi Road, Kolkata 700007

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 54 • जुलाई, 2006 • अंक 7

विमर्श

11
प्रो. कल्याणमल लोढ़ा
पुनर्जन्म : एक विवेचन

16
साध्वी योगक्षेमप्रभा
क्या मृत्यु के पश्चात् जीवन है

•

आवरण
अडिग

अनुभूति

23
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
देश-काल सापेक्षता : चिंतन और परिवर्तन

29
साध्वी विमलप्रज्ञा
तेरापंथ : पुरुषार्थ से प्राप्त सफलता

32
साध्वी नगीना
तेरापंथ : विसर्जन अहंकार-ममकार का

35
श्रीचंद रामपुरिया
त्यांरी लागी मुक्ति सूं ताली

38
कहानी
नासिरा शर्मा
इन्सानी नस्ल

42
कविता
भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएं

प्रसंग

7
शुभू पटवा
अनुशासन और विनय

शीलन

45
स्वामी विवेकानंद
ज्ञान नहीं; मुक्ति है लक्ष्य

48
मुनि मदनकुमार
सम्यक् दर्शन : एक आध्यात्मिक रत्न

52
मुनि कुमुदकुमार
आचार्य भिक्षु—गण में रहूं निरदाव अकेलो

55
बालकथा
स्वप्ना दत्ता
एक शुरुआत

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 007
Phone : (079) 23276252 23276204-05

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

संतोष हो गया

हेमजी स्वामी जब घर में थे, तब की घटना है। उनकी बहिन को मामा अपने घर ले गया। हेमजी स्वामी चिंता करने लगे। उन्होंने भीखणजी स्वामी के पास आकर कहा—'आज तो मेरा मन बहुत उदास है। बहिन की याद बहुत सता रही है। मन में ऐसी आ रही है कि घुड़सवार को भेजकर उसे वापस बुला लूं।'

तब स्वामीजी बोले—'सांसारिक सुख ऐसे ही क्षणिक होते हैं। संयोग का वियोग हो जाता है। शारीरिक और मानसिक दुख पैदा हो जाता है। इसलिए भगवान ने मोक्ष के सुखों को शाश्वत और स्थिर कहा है। वहां सुखों का कभी विरह नहीं होता।' स्वामीजी का यह वचन सुन हेमजी स्वामी के मन में संतोष हो गया।

यह भावना मन में तो आई थी

पाली की घटना है। एक साध्वी ने बेला किया। बाद में पारणा की आज्ञा ले मृत्यु-भोज वाले घर से लपसी ले आई। वह स्वामीजी को दिखाई। स्वामीजी ने मन में विचारा और उसे पूछा—'क्या तुमने यह बेला इस लपसी के लिए ही तो नहीं किया है? सच बताओ'

तब साध्वी ने कहा—'स्वामीनाथ! उसकी भावना मन में आई तो थी।'

तब स्वामीजी ने सब साधु-साध्वियों के लिए नियम बना दिया कि मृत्यु-भोज वाले घर में दूसरे दिन भी गोचरी के लिए न जाए। आचार्य के पास साधु-साध्वियां हों, उनके लिए यह नियम लागू नहीं किया गया। •

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। वह अपने चिंतन का उपयोग बहुआयामी परिप्रेक्ष्य में करता है। चिंतन का स्तर व्यक्ति के लक्ष्य, स्वभाव और वातावरण के अनुरूप उन्नत और अवनत होता रहता है। जो व्यक्ति अपनी भौतिक चेतना को विकसित करना चाहता है, उसके चिंतन का परिवेश भौतिक होता है। जिस व्यक्ति के मन में आध्यात्मिक अभ्युदय की चाह रहती है, उसके चिंतन का क्षेत्र अध्यात्म होता है। अध्यात्म के पथ का पथिक अपनी प्रवृत्तियों का एक निश्चित केंद्र बना लेता है। वह केंद्र की परिधि में उस दृष्टि से घूमता है, जो उसे केंद्र के मध्य बिंदु तक पहुंचा दे।

अध्यात्म के मूलभूत बिंदु तक पहुंचने के अनेक मार्ग हैं। प्रेक्षाध्यान साधना उसकी एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। प्रेक्षा का पथ भी छोटा-सा नहीं, बहुत लंबा है। लंबा होने पर भी वह प्रशस्त है और मंजिल तक पहुंचाने वाला है।

—आचार्यश्री तुलसी

आत्मा हमारी शत्रु भी है और मित्र भी है। यदि आत्मा के साथ मैत्री नहीं है तो व्यवहार जगत में बनने वाले मित्र भी बहुत दूर तक साथ नहीं दे सकेंगे। जो व्यक्ति शांत स्वभाव वाला है—क्रोध, कलह और कदाग्रह से मुक्त रहने का प्रयास करता है, वह निश्चित रूप से अपनी आत्मा को मित्र बना लेता है।

जीवन की सफलता का आधार-तत्व है—जागरूकता। जो निरंतर जागरूक रहता है, वह जीवन की बड़ी-से-बड़ी बाधा को निरस्त कर देता है।

जीवन की सफलता और सार्थकता का सबसे बड़ा आधार है—व्रत। व्रत की चेतना को जाग्रत करके अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

जीवन में सफलता की सबसे बड़ी बाधा है—प्रमाद। जब-जब लक्ष्य की विस्मृति होती है, व्यक्ति प्रमाद में चला जाता है। इसीलिए भगवान महावीर ने गौतम को संबोधित कर बार-बार यही कहा—गौतम। तू क्षण-भर भी प्रमाद मत कर।

—युवाचार्यश्री महाश्रमण

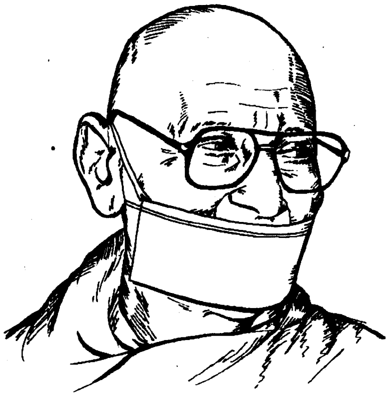

गृहस्थी मनुष्य अपरिग्रही नहीं हो सकता, जीवन चलाने के लिए भिक्षाजीवी नहीं हो सकता। उसके लिए महावीर ने इच्छापरिमाण; परिग्रह के सीमाकरण का विधान किया। सीमाकरण से अर्थशास्त्र के कुछ सिद्धांत फलित होते हैं। आकांक्षा और उत्पादन के असीम संवर्धन का सिद्धांत बहुत आकर्षक है, किंतु वह स्वाभाविक नहीं है और उसके परिणाम भी मनुष्य के हित में नहीं हैं।

अर्थशास्त्र आर्थिक समृद्धि का शास्त्र है और अर्थ का सीमाकरण शांति का शास्त्र है। असीम आकांक्षा और शांति में कभी समझौता नहीं होता। मनुष्य के लिए आर्थिक संसाधन भी जरूरी हैं। शांति के मूल्य पर यदि आर्थिक विकास हो तो परिणामतः अशांत मनुष्य आर्थिक समृद्धि की सुखानुभूति नहीं कर सकता। वर्तमान की अपेक्षा है—आर्थिक आवश्यकता की संपूर्ति और शांति। अतः इन दोनों का समन्वय किया जाए। ऐकांतिक दृष्टिकोण विश्व की समस्याओं के समाधान में सक्षम नहीं है, इसलिए सापेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर आवश्यकता की संपूर्ति का अर्थशास्त्र और शांति का अर्थशास्त्र—दोनों एक-दूसरे के पूरक हों। संयम, विसर्जन, त्याग, सीमाकरण—ये शब्द आर्थिक संपन्नता के स्वप्नद्रष्टा मनुष्य को प्रिय नहीं हैं। भोग, विलासिता और सुविधा—इन शब्दों में सम्मोहक शक्ति है। जो प्रिय नहीं लगते, वे मानवता के भविष्य के लिए अत्यंत अनिवार्य हैं। इस अनिवार्यता की अनुभूति महावीर और उनके सीमाकरण के सिद्धांत को अर्थशास्त्र के संदर्भ में समझने की प्रेरणा देगी।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रसंग

अनुशासन और विनय

एक ही सिक्के के दो पहलू मान सकते हैं—विनय और अनुशासन को, पर सिक्का उछाल कर जैसे 'हेड' और 'टेल' किया जाता है, वैसा नहीं हो सकता अनुशासन और विनय के प्रसंग पर। दोनों साथ-साथ ही देखे जा सकते हैं। अनुशासन है तो विनय है और विनय है तो ही अनुशासन की संभावना सोची जा सकती है। इसे अनेक स्तरों पर देखा जा सकता है—सामाजिक स्तर पर भी और वैयक्तिक स्तर पर भी। लेकिन, दोनों ही स्तरों पर यह एक साथ देख पाना एक विरल घटना होगी। ऐसी ही एक घटना लगभग ढाई शताब्दी पहले इस भारत-भूमि पर घटित हुई। दो सौ सैंतालीस साल पहले तेरापंथ का उद्भव ऐसी ही घटना है। इसे सामाजिक स्तर पर हुई घटना माना जाएगा। वैयक्तिक स्तर पर हम इसे स्वामी भीखणजी के जीवन में देख सकते हैं, जो इसी तेरापंथ संघ के प्रवर्तक कहलाए।

तेरापंथ और स्वामी भीखणजी का इतिहास खंगालने वाले बहुजन आमतौर पर यही राय बनाते हैं कि स्वामी भीखणजी ने अपने गुरु आचार्य रघुनाथजी से विद्रोह किया था और तब तेरापंथ की स्थापना हुई। यह राय आधारहीन नहीं है, पर देखने की बात यह है कि इस 'विद्रोह' में क्या स्वामी भीखणजी का 'अविनय' कहीं भी झलकता है? पूरा घटनाक्रम बेलाग नजर से देखें और आचार्य रघुनाथजी व भीखणजी के बीच हुए संवादों पर गौर करें, हम पाते हैं कि स्वामी भीखणजी के समूचे 'विद्रोह' में कहीं भी विनय का अभाव प्रकट नहीं होता। सैद्धांतिक पक्षों के प्रति अपनी पूरी प्रबलता और तीव्रता दर्शाते हुए स्वामी भीखणजी आचार्य रघुनाथजी के प्रति सर्वात्मना विनयशील रहते नजर आते हैं। उनका एकमात्र ध्येय होता है सिद्धांतों के प्रति पूरी तरह आस्थावान रहना। अपने गुरु को भी वे इसके लिए सहमत रखना चाहते हैं और इसी वजह से उनमें लंबे संवाद होते हैं।

स्वामी भीखणजी सिद्धांतों के प्रति जहां पूरी तरह अडिग और दृढ़ दिखाई देते हैं, वहीं प्रकारांतर से वे अपने गुरु के प्रति दायित्वशील भी नजर आते हैं और एक शिष्य के रूप में वे अपनी कर्तव्यनिष्ठा पर भी दृढ़ दिखाई देते हैं। किसी भी गुरु के लिए इससे बड़ा कोई अन्य सुख नहीं हो सकता कि उसी का शिष्य सिद्धांतों की विवेचना और व्याख्याओं में इतना क्षमतावान हो जाए कि अपने गुरु से वह संवाद कर सके। स्वामी भीखणजी ने ऐसी ही क्षमता हासिल की और गुरु से लगातार संवाद हुए। उन संवादों में सर्वत्र एक शिष्य की विनयशीलता झलकती है, तो दूसरी ओर सिद्धांतों के प्रति अटूट आस्था भी—जो बिना कठोर अनुशासन के कभी संभव नहीं। इस तरह हम पाते हैं कि वैयक्तिक स्तर पर स्वामी भीखणजी का आत्मानुशासन और विनयशीलता विरल हैं।

सिद्धांतों के लिए अपने गुरु के प्रति यह अगर विद्रोह भी माना जाए, तो भी यह नहीं माना जा सकता कि इसके पीछे कोई अन्य उद्देश्य रहा हो। स्वयं स्वामी भीखणजी अपने पृथक साधनाकाल में कहते भी हैं—'आत्मा रा कारज सार स्यां, मर पूरा देस्यां'। उनके विद्रोह का उद्देश्य शुद्ध आत्मकल्याण है, अन्य

कुछ नहीं; और इसीलिए हम यह भी पाते हैं कि स्वामी भीखणजी कहीं भी गुरु का 'विरोध' करते प्रकट नहीं होते। विरोध ही विनय का विनाशक है, विद्रोह तो एकाकी साधना है। निरपेक्ष और तटस्थ भाव से समाधिस्थ हो जाना ही 'विद्रोह' है, जो कि भीखणजी के तत्समय के पूरे कालखंड में स्पष्ट प्रकट होता है।

तब भी वे तेरापंथ के प्रवर्तक कहलाए; तेरापंथ संघ की संस्थापना उनके द्वारा ही हुई—यह कैसे? क्या उपरोक्त कथन और यह घटना तब विरोधाभासी नहीं माने जाएंगे? सतही तौर पर यही प्रतीत होता है। लेकिन, आचार्य रघुनाथजी व स्वामी भीखणजी के समूचे संवादों को गहरी दृष्टि से देखने तथा आचार्य रघुनाथजी से निष्क्रमित होने के बाद की पूरी अवधि पर बारीक दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पृथक संघ की स्थापना भीखणजी के निष्क्रमण का न लक्ष्य या उद्देश्य था और न उन परिस्थितियों में ऐसा संभव ही था।

इतिहास को देखेंगे तो पाएंगे कि तेरापंथ की स्थापना अनायास घटित हुई एक घटना-भर थी। पूर्वनियोजित रणनीति या व्यूहरचना का अंश भी उस पूरे घटनाक्रम में खोज पाना कठिन है। ठीक यहीं पर तेरापंथ स्थापना के बाद का आचार्य भीखणजी का कार्यकाल भी हम देखें; हमें स्पष्ट आभास होगा कि वह कार्यकाल भी आचार-निष्ठा और सैद्धांतिक आस्था को दृढ़ बनाने में ही बीता। विरोध व विग्रह के लिए न तो कोई अवकाश तलाशा गया और न उस समूचे घटनाक्रम में से हम आज वह तलाश सकते हैं। बेशक छद्म और छिद्रान्वेषण के अदले-बदले रूप लगातार प्रकट होते रहे। तेरापंथ के सामने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष चुनौतियां भी आती रहीं। तेरापंथ का 247 साल का इतिहास ऐसी चुनौतियों से भरा पड़ा है।

लेकिन, अपनी स्थापना से अब तक इन सभी चुनौतियों के उत्तर सकारात्मक रूप में दिए गए। उनमें विरोध या विग्रह झलकता ही नहीं। उनमें रचना या सृजन ही दृष्टिगत होता है। यही तेरापंथ का इतिहास है, इसके अनवरत विकास का मर्म है।

यह एक सुखद संयोग है कि आचार्य भिक्षु का जन्म आषाढ़ शुक्ला तेरस को हुआ और तेरापंथ का जन्म आषाढ़ पूर्णिमा को। इस बार जुलाई की 9 और 11वीं तारीख को ये पुण्य पर्व हैं। अगले दो साल बाद तेरापंथ के जन्म को 'ढाई-शती' होने वाली है। समय अपनी गति से चलता है, उसका भान जिनको समय पर हो जाता है, वे अवसर-विशेष का लाभ लेने से चूकते नहीं हैं। ढाई-शती का सफरनामा किसे रोमांचित नहीं करता? वे लोग, जो तेरापंथ संघ में पीढ़ियों से आबद्ध हैं, उनके लिए तो यह अवसर रोमांचक है ही, पर वे लोग, जो सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के संपोषण-संवर्द्धन के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं, उनके लिए भी तेरापंथ की ढाई-शती की अवधि चिंतनीय होनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि इस कालखंड में तेरापंथ ने अपने आचार-व्यवहार के प्रति दृढ़-संकल्पी रहते हुए सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से, आध्यात्मिक पुनर्जागरण की दृष्टि से, समता और सहजीवन को संपुष्ट करने की दृष्टि से किस तरह की भूमिकाएं अदा कीं। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवन विज्ञान के जो 'मानक' तेरापंथ ने समाज में प्रस्तुत किए—क्या सामाजिक-सांस्कृतिक नव-जागरण में उनकी कोई भूमिका है, हो सकती है?

तेरापंथ की ढाई-शती के उस अवसर पर इन सभी पक्षों पर गंभीर चिंतन के लिए हमारे सामने दो-तीन साल का समय है और यह समय इस दृष्टि से पर्याप्त माना जाना चाहिए कि संकीर्णताओं की बाड़ाबंदी से ऊपर उठकर हम इन पर गहराई से चिंतन करें। अपने आंतरिक अन्वेषण में तेरापंथ संघ जहां यह समय लगाएगा, वहीं प्रबुद्ध समाज-चेता ढाई-शती के इस सफर पर व्यापक रूप से दृष्टिपात करेंगे तो निश्चय ही हमें ऐसे सूत्र मिल सकते हैं जो आने वाले समय में संपूर्ण समाज के लिए मार्गदर्शक हो सकते हैं।

तेरापंथ की स्थापना के 247 वर्ष पूरे होने और आचार्य भिक्षु के पावन-जन्मोत्सव पर हमारा यही संकल्प होना चाहिए कि आने वाले समय और उसकी चुनौतियों को हम आज ही समझें और रचनात्मक तैयारी के लिए प्रतिबद्ध हो जाएं।

—शुभू पटवा

एक चूक : *जैन भारती के जून, 2006 के अंक में युवाचार्यश्री महाश्रमणजी के स्व-कथन में संदर्भ के रूप में भूलवश हमने 4 अप्रैल, 2005 छाप दिया। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का जन्मोत्सव वर्ष 2005 की चार जुलाई को था। संदर्भ में रही चूक के लिए हमें खेद है।*

—सं.

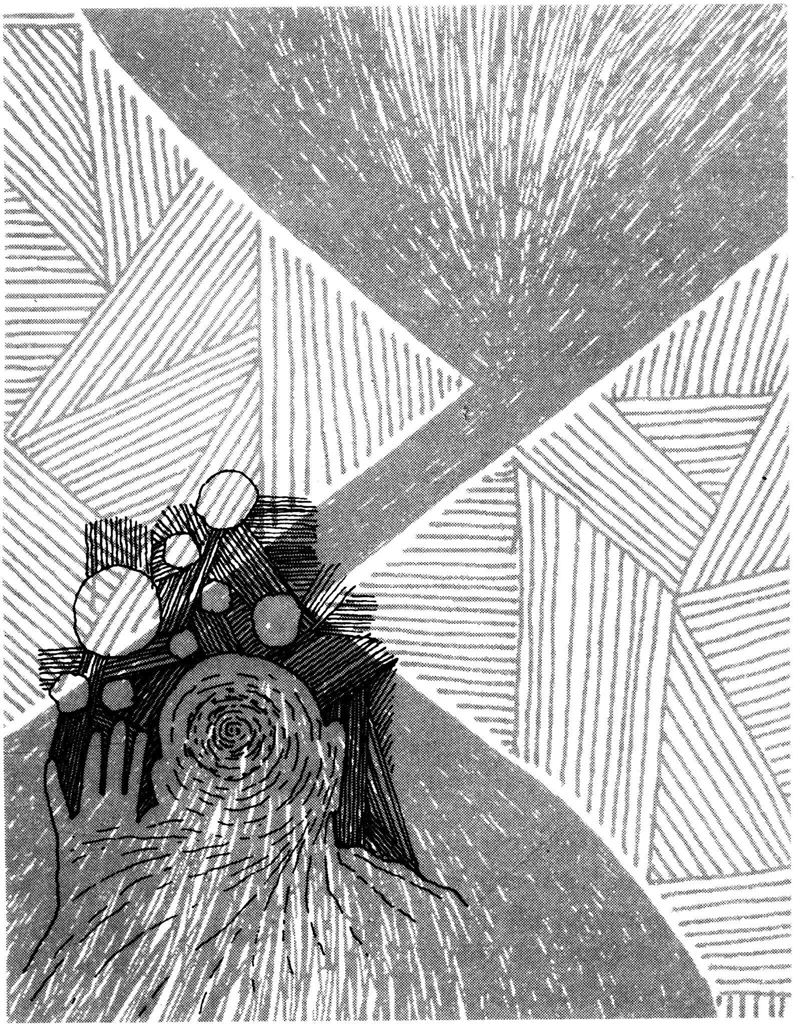

विमर्श

मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ऐसे सामाजिक सुव्यवस्थापन के अभाव में संभव नहीं है जिसमें समत्व-दर्शन और स्वातंत्र्य-जीवन की मानवीय प्रतिष्ठा न हो, पारस्परिकता के आत्मीय विस्तार का नाम ही धर्म है, और पारस्परिकता के अनात्मीय संकोच का नाम अधर्म। धर्ममय जीवन प्रेम से परिपूर्ण सर्वहित की कामना का पोषक रहता है; अधर्ममय जीवन मन्युमयता से सिक्त स्वहितकारी गतिविधियों की षड्यंत्रकारी नित्य नई संरचना करता रहता है।

—डी.डी. हर्ष

पुनर्जन्म : एक विवेचन

प्रो. कल्याणमल लोढ़ा

❑❑❑

आधुनिक परामनोविज्ञान और परकाय प्रवेश पर पुनर्जन्म के संबंध में विचार करें। टाइरेल ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'साइंस एंड साइकिक फिनोमिनन' में परामनोविज्ञान की उपयोगिता और महत्ता पर विचार किया है। इंग्लैंड में परामनोविज्ञान के विषय में शोध करने के लिए एक संस्था की स्थापना हो चुकी है। परामनोविज्ञान की उपलब्धि है मरणोपरांत और मरणोन्मुख व्यक्ति का दर्शन। परकाय प्रवेश पर योगदर्शन, योग वासिष्ठ, भोजवृत्ति आदि में विचार किया गया है। पतंजलि कहते हैं—'बंधकारण शैथिल्याभ्यासात् प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः'। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए 'भोजवृत्ति' में लिखा है कि दूसरों के चित्त के संसार को जानकर तब दूसरे के मृतक अथवा जीते शरीर में चित्त संसार के द्वारा अन्य सब नाड़ियों को साथ लेकर प्रवेश करता है। 'तत्त्व वैशारदी' व 'योगवार्तिक' में भी परकाय प्रवेश की पद्धति वर्णित है। शौनिक ऋषि ने सप्त सूत्रों (सुषुम्नादि) से मार्गशीर्ष को इस साधना का मास गिना है। शंकराचार्य का परकाय प्रवेश प्रसिद्ध है। राजा शिखिध्वज की पत्नी रानी चूड़ाली की दंतकथा भी उपलब्ध है। स्वामी शिवानंद ने अपने ग्रंथ—'मृत्यु के उपरांत आत्मा का रूप' में ऐसे अनेक उदाहरण दिए हैं। अंग्रेज जनरल एल.पी. खेरेल ने अपने एक आलेख में एक योगी द्वारा परकाय प्रवेश स्पष्ट देखा था। फणिभूषण देव ने अपने—'परलोक समीक्षणा' ग्रंथ में 'चक्रबंध' के द्वारा अनेक मृतात्माओं से कथोपकथन का विवरण दिया है। इसी प्रकार स्वामी अभेदानंद ने अपने ग्रंथ में भी इसका विवेचन किया है। मोशिये वेल, ओलिवर लाज, आलिवर कास्क, निकोलिस रोरिक ने भी परकाय प्रवेश का उल्लेख किया है। ओलिवर लाज ने यह लिखा है कि प्राण-तत्त्व जड़ पदार्थों को अनुप्राणित करता है और विनष्ट नहीं होता। इसी प्रकार 'पोस्टमार्टम जर्नल' में साइकिल की एक दुर्घटना में मरणोन्मुख व्यक्ति स्काट के अनुभवों का सजीव वर्णन है। डॉ. स्टीवेन्स ने 200 से अधिक उदाहरणों से भी परामनोविज्ञान के माध्यम से पुनर्जन्म का प्रामाणिक विवेचन किया है। केनेटिना किंग ने बताया है कि मृत्यु के उपरांत भी लिंग शरीर में चेतना

"

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों का मुख्य ध्येय है इनके बंधन से मुक्त होना। छांदोग्य श्रुति की अंतिम ऋचा कहती है—जो सर्वभूतहित भाव में रहता है, धर्म का पालन करता है, तप और त्यागमय जीवन व्यतीत करता है वह—'न च पुनरावर्तति, न च पुनरावर्तति।' यही उद्घोष सभी चिंतकों का, धर्माचार्यों और दार्शनिकों का है। परलोक में शांति-लाभ के लिए आवश्यक है लौकिक त्यागमय जीवन, जो दैवी संपदाओं और सद्वृत्तियों से पूर्ण हो।

तीसरी व अंतिम कड़ी

विद्यमान रहती है—(दृष्टव्य-प्रेक्षाध्यान, जुलाई 1994)। एक ग्रंथ 'लाइफ आफ्टर डेथ' में जार्ज वुड के द्वारा परलोक से आए हुए संवादों का संकलन कर यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य को एक नहीं, अनेक जन्म लेने पड़ते हैं। लेखक के अनुसार 'मृत्यु मनुष्य के अनुभवों का अंतिम द्वार नहीं है, न वह प्रत्येक वस्तु की समाप्ति है।' ये संवाद और सूचनाएं मरणोपरांत जीवन के प्रामाणिक स्रोत हैं। विलरी रैंडल ने उपर्युक्त ग्रंथ—'लाइफ आफ्टर डेथ' में एक सहस्र व्यक्तियों की मरणासन्न स्थिति का वैज्ञानिक विवेचन किया है और यह प्रमाणित किया है कि 'मृत्यु नए जीवन का ही एक गवाक्ष' है। मृत्यु के समय यमदूतों का आगमन, दिव्य दर्शन, प्रेतछाया इन सबका उल्लेख इस ग्रंथ में है। इस ग्रंथ के लेखक ने अमेरिका व भारत में अनुसंधान किया था और व्यक्तियों के प्रत्यक्ष अनुभव हमें आश्चर्य में डाल देते हैं। ग्रंथ के उपसंहार में लेखक का यह वक्तव्य—निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है—'यदि आप हिंदू हैं तो आपका यही अनुभव होगा। मृत्यु के समय ऐसे यमदूत आपको लेने आ रहे हैं, आप निराश न हों, आप धवल वस्त्रों में उनके साथ यात्रा पर प्रस्थान करेंगे। उनकी आभा पवित्रता से आच्छन्न है और उदारता एक दयालु नरेश की।' इस ग्रंथ ने भारतीय मान्यता को सिद्ध कर दिया है कि साधक व सदाचारी के लिए परम आनंद का विधान है। महामिलन का साधन मानकर 'सूर्य कोटि प्रकाश' व 'चंद्र कोटि सुशीतलम्' से अमरत्व प्राप्त करता है। गीता में श्रीकृष्ण ने यही कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्तवा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।(8.5)

× × × ×

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि।(9.3)

रैंडल का वक्तव्य इसी कथन की वैज्ञानिक संपुष्टि है।

कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धांतों का मुख्य ध्येय है इनके बंधन से मुक्त होना। छांदोग्य श्रुति की अंतिम ऋचा कहती है—जो सर्वभूतहित भाव में रहता है, धर्म का पालन करता है, तप और त्यागमय जीवन व्यतीत करता है वह—'न च पुनरावर्तते, न च पुनरावर्तते।' यही उद्घोष सभी चिंतकों का, धर्माचार्यों और दार्शनिकों का है। परलोक में शांति-लाभ के लिए आवश्यक है लौकिक त्यागमय जीवन, जो दैवी संपदाओं और सद्वृत्तियों से पूर्ण हो। श्रीकृष्ण ने इसी पारलौकिक जीवन की शांति का विवेचन अर्जुन से किया—शरीर, मानस व वाणी-तप इसके प्रमुख साधन हैं—अंतिम समय में सर्वात्म भाव से आत्मसमर्पण करना ही अंतर का त्याग है। आदि शंकराचार्य 'प्रश्नोत्तर माला' में लिखते हैं—

बद्धो हि को वा विषयानुरागी का वा
विमुक्तिर्विषये विरक्तिः।
को वास्ति घोरो नरकः स्वदेहः
तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं किमस्ति।।

बंधन विषयी है—विषयों का त्याग ही विमुक्ति है। यह देह ही नरक है और तृष्णा का त्याग ही स्वर्ग है। हमने बार-बार यही दोहराया—'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।' क्रियाशून्य जीवन ही परम पूजा है, मौन परम तप है, चिंताविहीन होना ही परम योग है। इच्छा का अभाव शांति देता है—

नास्ति शान्तिपरो मन्त्रो न देवोचात्मनः परः।
नात्मसन्धेः परापूजा न तु तृप्तेः परं फलम्।।

यही हमारे जीवन का कर्मबंधन से मुक्ति का, आवागमन से छूटने का परम लक्ष्य है—'पुनर्जन्म दुःखात् परित्राहि शम्भो।' जीवन को सतत प्रवाहशील नदी कहने वाले महान ऋषि भी इसका समापन महासागर में खोजते हैं, जहां वह सीमित से असीमित बन जाती है और सर्वत्रः सर्वरूपेण परिव्याप्त। पुनर्जन्म का विवेचन भी उन्होंने इसी सत्य को लक्ष्यगत रखकर असीमत्व में एकाकार होने का किया। यही मनुष्यत्व की परम साधना है—'सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्, तथात्मानं समाधत्स्व भ्रश्यसे न पुनर्यथा।' सुभाषित है—

अनन्ते संसारे विचरति भयासक्तिरहितः
तथा निर्वाणं वै निजगतिविधानं प्रकुरुते।।

इसी को महावीर ने कहा और गौतम बुद्ध ने भी। महावीर कहते हैं—

कम्माणं तु पहाणाए आणुपुव्वी कयाइउ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययन्ति मणुस्सयं।।[1]

और बुद्ध भी—

सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पंडितो भव।
निद्धन्त मलो अनुडगणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसी।।[2]

श्रमण संस्कृति में कर्मवाद और पुनर्जन्म का महत्त्व निर्विवाद है। जैन धर्म व दर्शन की तो यह आधारशिला है क्योंकि वह आत्मा को शाश्वत गिनता है। सर्वत्र पौद्गलिक अष्ट कर्मवर्गणाएं विश्व में व्याप्त हैं। ये वर्गणाएं हैं—

भावकर्म व द्रव्यकर्म। भावकर्म राग-द्वेषादि के विकार हैं और द्रव्यकर्म जीव से आबद्ध हैं। औदारिक शरीर पुद्गल के कारण होता है। उमास्वाति 'तत्त्वार्थ सूत्र'[3] में कहते हैं—'शरीर वांग्मनः प्राणापाना पुद्गलानाम्।' 'सुख-दुख-जीवित मरणोपग्रहाश्च' 'पूरणाकरण धर्मा'—होने के कारण, वह पुद्गल कहा जाता है—'पूरणमलन्वर्थ संज्ञत्वात् पुद्गलाः'। कर्मलिप्त आत्मा आवागमन के कारण जन्म-मृत्यु-जन्म में पड़ी रहती है। जीव अपने प्रमाद से ही जन्मान्तर करते हैं। महावीर का कथन है—'सव्वे स च कम्यकप्पिया अवियत्तेणसुहेण पपोषिणो। हिंडति मयाउला सदा जाह जरामरणे हिडमिद्रदु याः।[4]

ये कर्म आठ प्रकार के हैं (द्रष्टव्य कर्म तत्त्व निबंध)। कर्म आश्रव से आते हैं और संवर निर्जरा से समाप्त होते हैं। तब जीव कर्मबंध से मुक्त होकर पुनः जन्म धारण नहीं करता। चारों कषाय पुनर्जन्म के कारण हैं—'गाढ़ा य विवाग कम्मणो'[5]—पूर्वसंचित कर्मों के विपाक भयंकर होते हैं। जैन धर्म संसार के सभी पदार्थों को आवागमन से बद्ध गिनता है। परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है और इसी से निरंतर रूपांतरण होता रहता है। निर्जरा से आत्मा बंधनमुक्त हो जाती है। जैन सिद्धांतानुसार जन्म और मृत्यु का समय—'अंतरकाल' है। इसको 'विग्रहकाल' भी कहा जाता है—अर्थात् इसमें आत्मा की अंतराल गति होती है। विभिन्न लोकों के माध्यम से आत्मा की इन गतियों का विवेचन जैन दार्शनिकों ने किया है। भगवती सूत्र (2.20) में इसका विवेचन उपलब्ध है। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के शब्दों में—'कर्तृत्व और फलभोक्त तत्त्व एक ही शृंखला के दो सिरे हैं। फलप्राप्ति इच्छा से नियंत्रित न होकर क्रिया नियंत्रित होती है। कर्म पुद्गलों का संचय न करने पर जीवन उत्तरोत्तर ऊर्ध्व गति में जाता है।'[6]

णिव्वाणं मेव सिद्धा सिद्धा णिव्वाणं णिदि समुदिट्ठा।
कम्म विमुक्को अप्पा गच्छ इ लोय गपज्वंतं।।[7]

'तत्त्वार्थ सूत्र' में कर्मबंध के पांच कारण हैं—'मिथ्या, दर्शनाविरिति, प्रमाद कषाय योग बंध हेतवः'—जीव देहरहित होकर मुक्त होता है।

कम्मं वेदयमाणों जीवी भावें करेदि जासियं।
तो तस्स तैणकत्ता हवदि त्तिय सासणे पढितं।।[8]

किए हुए कर्मों को भोगे बिना मुक्ति संभव नहीं हो सकती है। कर्मों के कारण ही जीवन संसार के विशाल वन में भटकता रहता है—'कम्मणि मित्तं जीवो हिंडदि संसारघोरकांतारे'।[9] आचार्य भद्रबाहु ने 'योग बिंदु' में भाग्य और पुरुषार्थ का विवेचन करते हुए कहा है—

देवात्म देवात्म कृतं विधात् कर्मयत् पोर्व देहिकम।
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरमः।।[10]

पूर्वदेह में किए हुए कर्मों को 'भाग्य' कहा जाता है और वर्तमान जीवन में जो कर्म किए जाते हैं—वे पुरुषार्थ हैं। दोनों अन्योन्याश्रित हैं; दुर्बल भाग्य पुरुषार्थ के द्वारा उपहत हो जाता है और दुर्बल पुरुषार्थ भाग्य के कारण। आचार्य समंतभद्र कहते हैं कि कर्मफल के द्वारा ही श्वान देव हो सकता है और देव श्वान। 'जसहर चरित' में उल्लेख है कि कर्मफल के कारण ही महाराज जसहर की माता चंद्रमती द्वारा आटे के कुक्कुट की बलि देने से उसे अनेक पशु-जन्मों में आक्रांत होना पड़ा। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव कर्म पुद्गलों से इस लोक में मानसिक, वाचिक व कायिक क्रियाओं को करते हुए राग-द्वेष कषायों से कर्मरूपी धूलि से ग्रसित होता है। विषयों से विरक्त होकर ही जीव आत्मा का साक्षात्कार कर पुनर्जन्म से मुक्त होता है। आचार्य कुंदकुंद कहते हैं—'विसए विरत्त चित्तो जोई जाणेई अप्पाणं।' इस प्रकार जैन धर्म में कर्म ही पुनर्जन्म का कारण है। आचार्यों और कवियों ने इसका भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन किया है।[11] प्रसिद्ध ग्रंथ—'उपमिति भव प्रपंच कथा'—जन्म-जन्मांतर की ही प्रतीक कथा है। महावीर स्वामी गौतम को भी जातिस्मरण के हेतु बताते थे। जाति-स्मृति के तीन कारण हैं—स्व-स्मृति, परव्याकरण और अन्य ज्ञानी व्यक्ति के द्वारा। प्रथम 'स्व' से होती है और अन्य दोनों अन्य व्यक्तियों से, विशेष परिस्थिति अथवा घटना से। भगवान महावीर के जीवन प्रसंगों में जातिस्मरण की अनेक घटनाएं हैं। मुनि किशनलाल ने कुछ आधुनिक व्यक्तियों का भी उल्लेख किया है (प्रेक्षाध्यान-अप्रैल, 1993)।

बौद्ध धर्म भी पुनर्जन्म में विश्वास करता है। जातक कथाएं बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएं हैं। स्वयं बुद्ध ने कांटा चुभने का कारण पूर्वजन्म में प्राणी-वध कहा था। बौद्ध धर्म जीवों की विचित्रता का कारण कर्म से जोड़ता है—मन, वचन और काम ही कर्म है। विज्ञानवादी धर्म को 'वासना' कहते हैं (प्रभाकर का भी यही मत है)। बौद्ध ग्रंथ 'मिलिंद प्रश्न' में जन्मान्तर के प्रसंग उपलब्ध हैं। 'धम्मपद' में बुद्ध ने पूर्वजन्म की अनेक गाथाएं दी हैं। वे कहते हैं—

इध तप्पति पेच्च तप्पति (जन्दति) पापकारी उभयत्थ तप्पति।
पापं मे कतंति तप्पति भिय्यो तप्पति दुग्गतिं गतो।[12]

वे कहते हैं कर्दभरहित आवागमन से मुक्त होता है और निर्वाण प्राप्त करता है और कुकर्मी बार-बार जन्म लेता है। नरक की यातना सहता है। सदाचारी स्वर्ग में जाकर, अर्हत होकर निर्वाण प्राप्त करता है।[13] इससे प्रमाणित है कि बुद्ध का स्वर्ग व नरक में विश्वास था। (द्रष्टव्य जैन धर्म में वैतरणी नर्क की नदी है, इसका वर्णन मरणोत्तर काल में जीव भोगता है—कूट शाल्मली के पत्ते तीक्ष्ण पैनी धार वाले होते हैं, नंदनवन-कामधेनु सदाचारी को मिलते हैं।) बुद्ध ने कहा—

मुंच पुरे मुंच पच्छतो मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सव्वत्थ विमुत्तमानसो न पुन जाति जरं उपेहिसि।।[14]

'भिक्षुओ! भूत, भविष्य और वर्तमान से मुक्त होकर तुम उस पार जाओ। वहां तुम पूर्णतः स्वतंत्र हो और कभी जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ोगे।' उनका स्पष्ट कथन था कि काम तृष्णा-भव तृष्णा से मुक्त होने पर प्राणी पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता। तृष्णा के विरोध से उपादान निरुद्ध हो जाता है और भव से निरुद्ध होने से जन्म निरुद्ध। इस प्रकार दुख स्कंध का निरोध होकर वह जन्म-मृत्यु से भी मुक्त होता है। सभी संस्कारों का शमन, चित्त-मलों का त्याग और तृष्णा का निरोध ही निर्वाण (मुक्ति) है। बुद्ध नास्तिक होते हुए भी पुनर्जन्म के सिद्धांत को मानते थे। उनका कहना है कि यह पुनर्जन्म आत्मा के कारण न होकर अहंकार से होता है और यह कर्मवाद तथा 'प्रतीत्य समुत्पाद' नियमों के अधीन होता है। जन्मांतर के कुकर्म ही संस्कार हैं और पूर्वजन्म ही तृष्णा का हेतु है और अज्ञान का कारण तृष्णा है। संतुष्ट होने से त्रास नहीं खाता और त्रास के न खाने से इस शरीर में निर्वाण प्राप्त करता है, इस प्रकार से जानने-देखने पर आस्रवों का क्षय होता है।[15]

जैन और बौद्ध धर्म के अतिरिक्त सिक्ख धर्म में भी कर्म और पुनर्जन्म की मान्यता है। वर्तमान जीवन भविष्य के अनेक जीवनों का आधार है। सिक्ख धर्म पुनर्जन्म में यह मानता है कि मनुष्य को मरणोत्तर काल में भी पुनः संसार में नया जन्म लेना है। कर्मफल हरि नाम से ही मिटता है। जब आत्मा कर्मों से लिप्त नहीं रहेगी तब आवागमन का चक्कर मिट जाएगा, अन्यथा यह चक्र चलता रहेगा। मनुष्य जन्म के पूर्व अनेक जन्म होते हैं—कीट, मछली, विभिन्न कीड़े-पतंगे आदि। सिक्ख धर्म स्वर्ग में विश्वास करता है। स्वर्ग आनंद-धाम है। अज्ञान से जीव प्रभु को भूल जाता है—

जो ठाकुर सदा सदा हजूरे।
ता कऊ अन्धा जानन दूरे।।
जाकी टहिल पावे दरगह भानु।
तिसहि बिसारे मुगध अजानु।।[16]

हरिनाम ही पापों को दूर करता है—'हरि को नामु कोटि-कोटि पाप परहरै'।

पुनर्जन्म से छूटने का उपाय भारतीय संस्कृति में प्रज्ञा, त्याग और तप है—मन की पवित्रता ही आत्मसिद्धि का कारण है। मानव इसी से स्वरूप और स्वभाव भूमि में उत्थित कर्म से परम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति करता है—'स्व कर्मणा तमम्च्चयं सिद्धि विन्दति मानव' और 'सिद्धि प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति—निष्ठा, ज्ञानस्य या परा।' यही शाश्वत एवं अव्यय पद है। दिव्य प्रकाश की परमानंद अवस्था, वहां सूर्य-चंद्रादि ज्योतियों की विद्यमानता नहीं रहती और मानवात्मा पूर्णात्मा की मंगलमयता में नित्य प्रतिष्ठित रहती है। भारतीय आप्त-पुरुषों ने, ऋषि-मुनियों ने, साधक-भक्तों ने इसी को जीवन की चरम उपलब्धि गिना है। पुनर्जन्म का यहीं अंत होता है और जीव आवागमन से, बंधनों से, दुखों से मुक्त होता है। चाहे मत भिन्न रहे हों, मार्ग पृथक-पृथक व चिंतना विविध हो, पर अंतिम लक्ष्य यही है। गायत्री के 'धियो योनः प्रचोदयात्' में यही सत्य है। सामवेद की ऋचा है—

समेत विश्वा औजसा पति दिवो
य एक इद् भूरति सिधर्जनानाम्।
स पूर्व्यो नूतन आजिगषिन्
तं वर्तनीरनुवावृत एक इत्।।

[(1.4.213 (372)]

सार तत्त्व है कि वह केवल 'एक' है—वही सबका अतिथि है, वही पुरातन से नवीन की ओर जाता है और सारी दिशाएं, सारे पथ उसी ओर जाते हैं। तत्त्वतः वह एक है। हे प्रजाओ! उस सुलोक के अधिपति की सामूहिक स्तुति करो। ❖

संदर्भ

1. भगवान महावीर—उत्तराध्ययन सूत्र 317
2. गौतम बुद्ध—धम्मपद 234
3. तत्त्वार्थ राजवार्तिक—(5/1)

4. सूत्रकृतांग (1.2.3)
5. वही (3.13.23)
6. आचार्य महाप्रज्ञ (जैन दर्शन-मनन मीमांसा, पृ. 273)
7. नियमसार (183)
8. पंचास्तिकाय (57)
9. वारहअनुवैक्खा (37)
10. आचार्यभद्रबाहु योगबिंदु (3.25)
11. नैतास्तो जन्म सतो न नाशौ दीपस्तम्भ पुद्गलं भावतेऽस्ति (स्वयंभू स्तोत्र)
12. धम्मपद (17)
13. वही (1.2.44)
14. वही (348)
15. रथधनि निदंग (34.4.6)
16. गुरुनानक जपुजि

❖❖

एक समय था जब मनुष्य प्रकृति की दया पर आश्रित था। आज वह उसका दास नहीं है; बल्कि प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को खोजकर वह उसका स्वामी बन बैठा है। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में तेजी से प्रगति हुई है। न्यूक्लियर भौतिकी तथा अणु-आयुधों के क्षेत्र में वैज्ञानिक उपलब्धि इतनी आश्चर्यजनक है कि यदि मनुष्य चाहे तो संपूर्ण मानव-जाति का विनाश करके पृथ्वी का स्वरूप ही बदल दे। इस प्रकार मानव-जाति आज विनाश के कगार पर खड़ी है, उसका मन अस्पष्टता और संशय से ग्रस्त है। वह उसी कगार की ओर दौड़ रही है जिससे वह बचना चाहती है। स्पष्ट है, हमें अपने मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करना होगा।

विज्ञान की प्रगति उत्तरोत्तर सुख प्राप्त करने की मानवीय अभिलाषा का ही अंग है। किंतु दुर्भाग्य से, मनुष्य को मनुष्य के रूप में ठीक से नहीं समझा गया है। और इस संबंध में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी बड़ी ही गलत भाषा का प्रयोग होता आया है। कुछ लोगों की दृष्टि में मनुष्य का अर्थ है—सिर्फ गोरी चमड़ी का मनुष्य। निश्चित ही यह दृष्टिकोण सभी नैतिक आदर्शों के प्रतिकूल है। विश्व के कुछ भाग इसलिए अधिक सभ्य कहलाते हैं, क्योंकि वे दूसरे भागों की कीमत पर सभ्य बने हैं। अब समय आ गया है कि औपनिवेशिक शोषण का स्थान संपूर्ण मानव-जाति की सहयोगपूर्ण एवं सामूहिक उन्नति को मिलना चाहिए। अलगाव और सर्वाधिपत्य की भावनाओं के स्थान पर मनुष्य के महत्त्व और गरिमा की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। वैज्ञानिक कौशल में भी साधु वृत्ति और विवेक का समावेश आवश्यक है। इस प्रकार मानव को मानव के रूप में समझना होगा। आज के प्राविधिक सामंजस्य के संसार में हम में और दूसरों में बहुत कम अंतर रह गया है। हमारा अपना कल्याण दूसरों के कल्याण की भावना के साथ ही संभव है। अहिंसा का सिद्धांत विश्व-नागरिक के इस मानवीय दृष्टिकोण को आवश्यक भूमिका प्रदान करता है। आवश्यकता है उसे ठीक तरह से समझने की और सही ढंग से व्यवहार में लाने की।

मनुष्य द्वारा संगठित प्रयत्नों से किए गए घृणित कार्यों से हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं। कर्म का सिद्धांत बताता है कि अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं। अपना ध्यान हमें स्वयं रखना होगा। अपने प्रयोजनों का विश्लेषण और उद्देश्यों का आकलन व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से हमें स्वयं करना होगा, किसी शक्ति के आगे पक्षपात से या डर से बिना झुके। और, इस प्रकार हमें पूर्ण आत्म-विश्वास एवं इस आशा के साथ कार्य करना होगा कि मानवीय अस्तित्व और कल्याण के लिए प्रगति आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति में एक दिव्य क्षमता है। उसका कार्य है कि वह धर्म-पथ का अनुसरण करता हुआ उस दिव्यता को जाने, पहचाने और अनुभव करे। भौतिक विज्ञान एवं प्राविधिक कौशल ने भी हमें शक्तिसंपन्न बनाया है। निश्चय तो यह करना है कि मानव-समाज के कल्याण के लिए हमें उत्तरोत्तर उन्नति करनी है या उस शक्ति के अविवेकपूर्ण प्रयोग से स्वयं को रेडियोधर्मी धूल में परिवर्तित कर देना है।

आदर्श पड़ोसी बनने की भावना का विकास और परिग्रह-वृत्तियों पर संयम—ये दोनों ऐसे गुण हैं जो एक-दूसरे के सहारे से बढ़ते हैं। जो बात एक व्यक्ति के लिए सच है, वही संपूर्ण सामाजिक या राजनीतिक वर्ग के लिए भी सच है। जो व्यक्ति स्वयं को नहीं जानता या जानना नहीं चाहता, वह अपने या दूसरों के साथ कभी शांतिपूर्वक नहीं रह सकता। स्वयं को और दूसरों को ठीक-ठीक जानने से ही पारस्परिक संशय दूर किए जा सकते हैं, युद्ध की विभीषिका को टाला जा सकता है और इस प्रकार शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का यथार्थ वातावरण तैयार किया जा सकता है।

—डॉ. हीरालाल जैन, डॉ. आ.ने. उपाध्ये

क्या मृत्यु के पश्चात् जीवन है

साध्वी योगक्षेमप्रभा

जन्म से पूर्व जीवन था। मृत्यु के पश्चात् जन्म होगा। जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म की इस यात्रा का अपर नाम ही संसार है। यह अनादिकालीन परंपरा है। शाश्वत सत्य है। कर्मयुक्त आत्मा जन्म-मरण के धागे से गुंथी हुई भवपरंपरा को आगे बढ़ाती है। प्रश्न है, मृत्यु के पश्चात् होने वाले जन्म का आधार क्या है? पूर्वजन्म था, इसका साक्ष्य क्या है?

जैन दर्शन के अनुसार यह संसार चतुर्गतिमय है। जब तक संपूर्ण कर्मावरणों का विलय नहीं होता—जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव—इन चार गतियों में परिभ्रमण करता रहता है। संसार के समस्त जीव इन चार गतियों में समाविष्ट हैं। अस्तित्व की दृष्टि से संपूर्ण जीव-सत्ता एक पद 'जीवास्तिकाय' से अभिव्यक्त होती है।[1] व्याख्याक्रम की भिन्नता से वह अनेक रूपों में व्याख्यायित होती है। व्याख्या का एक आधार है—गति। यह जैन दर्शन का पारिभाषिक शब्द है। यहां गति 'गमन' अर्थ की द्योतक नहीं है। गति से तात्पर्य है—एक जन्म से जन्मांतर गमन। यह चार प्रकार से होता है। नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति।[2]

"

कर्मलिप्त आत्मा का जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जन्म होना निश्चित है। पुनर्जन्म कर्मसंगी जीवों के ही होता है। भगवान महावीर ने कारणों का प्रतिपादन करते हुए कहा—क्रोध, मान, माया और लोभ—ये पुनर्जन्म के मूल को पोषण देने वाले हैं। आचारांग सूत्र का प्रारंभ ही पूर्वजन्म की जिज्ञासा से होता है। मैं कौन हूं, कहां से, किस दिशा से आया हूं? यहां से मृत्यु को प्राप्त कर किस दिशा में जाऊंगा? ये प्रश्न पूर्वजन्म के सिद्धांत को उजागर करते हैं।

नरकगति

नरकगति में रहने वाले जीव नारक कहलाते हैं। नारक जीवों का आवास नीचे लोक में स्थित रत्नप्रभा आदि पृथ्वियां हैं। इनमें रहने वाले जीव बहुत अधिक वेदना का अनुभव करते हैं। इनकी वेदना तीन प्रकार की होती है—1. क्षेत्रजन्य वेदना, 2. परस्परजन्य वेदना, 3. परमाधार्मिक कृत वेदना। नारक जीवों का दुख उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। इन भूमियों में शीत, आतपजनित वेदना भी अधिक होती है। जैन दर्शन के अतिरिक्त इसकी पुष्टि पुराणों में पाताललोक, ईसाइयों में नरक (Hell) और मुस्लिमों में दोजख के रूप में होती है। उनके अनुसार पापी प्राणियों को यहां अपने-आप दंड मिलता है। शास्त्रकारों ने नरकगति में उत्पन्न होने के चार हेतु प्रतिपादित किए हैं—महाआरंभ, महापरिग्रह, पंचेंद्रियवध और मांसाहार।[3]

तिर्यंचगति

यह जीवों का सबसे बड़ा वर्ग है। एक-इंद्रिय से चार-इंद्रिय तक

सभी जीव तिर्यंच ही होते है। इनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कृमि, चींटी, मक्खी, मच्छर आदि अनेक जीव हैं। पंचेंद्रिय तिर्यंच में जलचर, स्थलचर, खेचर आदि जीवों का समावेश होता है। तिर्यंच के भेद-प्रभेदों का विवेचन विज्ञान में भी विशदरूप से प्राप्त होता है। तिर्यंचगति के हेतु प्रतिपादित करते हुए कहा है कि माया, गूढ़माया, असत्य वचन, कूटतोल, कूटमाप—ये तिर्यंचगति के कारण हैं।[4]

मनुष्यगति

विकास की सर्वाधिक क्षमता मनुष्य में पाई जाती है। मनुष्य के तीन प्रकार हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और संमूर्च्छिम। कर्मभूमिज मनुष्य कर्मक्षेत्र में उत्पन्न होते हैं। ये असि, मसि, कृषि आदि साधनों से अपनी जीविका चलाते हैं। अकर्मभूमिज मनुष्य यौगलिक कहलाते हैं। उनकी आवश्यकताएं अत्यल्प होती हैं। कल्पवृक्ष ही उनके जीवनयापन का आधार होते हैं। जैनागमों में दस प्रकार के कल्पवृक्षों का उल्लेख मिलता है। संमूर्च्छिम मनुष्य मानव शरीर से विसर्जित मल-मूत्र आदि चौदह स्थानों में उत्पन्न होते हैं। इनका आयुष्य अंतर्मुहूर्त का ही होता है। मनुष्यगति में होने के बावजूद इनका विकास नाममात्र ही होता है।

जन्म की दृष्टि से मनुष्य के दो प्रकार हैं—गर्भज और संमूर्च्छिम।

देवगति

इनका शरीर दिव्य परमाणुओं से निष्पन्न है। भौतिक सुख और समृद्धि की अपेक्षा देवों की ऋद्धि विशेष होती है। देवता के प्रमुख चार भेद हैं—भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक।[5]

देवगति का आयुष्य पूरा करने के बाद कोई भी देव तत्काल पुनः देव नहीं बन सकता। नारक जीव भी तत्काल नरकगति में उत्पन्न नहीं होता। इन दोनों गतियों में परस्पर संक्रमण भी नहीं होता। मनुष्य और तिर्यंच साधारणतया चारों गतियों में उत्पन्न हो सकते हैं। मोक्ष की प्राप्ति केवल मनुष्यगति में ही संभव है।

आयुष्य कर्म के पुद्गल परमाणु जीव में ऊंची-नीची, तिरछी-लंबी और छोटी-बड़ी गति की शक्ति उत्पन्न करते हैं।[6] नरक आदि गतियों में उत्पत्ति में आयुष्य कर्म के साथ-साथ गति नामकर्म भी हेतुभूत बनता है।

जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जन्म, यही संसार है। मरने के बाद स्थूल शरीर छूट जाता है। सूक्ष्म शरीर संसारावस्था में निरंतर विद्यमान रहता है। वह सूक्ष्म शरीर ही अंतरालगति करता है। दूसरी गति में जाता है।

अंतरालगति

मृत्यु और जन्म के मध्य का काल अंतर-काल कहा जाता है। उसका परिमाण एक, दो, तीन या चार समय तक का है। अंतरकाल में स्थूल शरीर रहित आत्मा की गति होती है। उसका नाम अंतरालगति है। वह दो प्रकार की होती है—ऋजु और वक्र।[7]

ऋजुगति

मृत्युस्थान से जन्मस्थान सरल रेखा में होता है, वहां आत्मा की गति ऋजु होती है। ऋजुगति में एक समय लगता है।

वक्रगति

जब उत्पत्ति-स्थान विषम श्रेणी में होता है, वहां गति वक्र होती है। वक्रगति में घुमाव करने पड़ते हैं। एक घुमाव वाली वक्रगति में दो समय, दो घुमाव वाली में तीन समय और तीन घुमाव वाली में चार समय लगते हैं।

आत्मा स्थूल शरीर के अभाव में भी सूक्ष्म शरीर द्वारा गति करती है, यह अंतरालगति की प्रक्रिया पुनर्जन्म के साथ जुड़ी हुई प्रक्रिया है।[8]

पूर्वजन्म : पुनर्जन्म

कर्मलिप्त आत्मा का जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जन्म होना निश्चित है। पुनर्जन्म कर्मसंगी जीवों के ही होता है।[9] भगवान महावीर ने कारणों का प्रतिपादन करते हुए कहा—क्रोध, मान, माया और लोभ—ये पुनर्जन्म के मूल को पोषण देने वाले हैं।[10] आचारांग सूत्र का प्रारंभ ही पूर्वजन्म की जिज्ञासा से होता है।[11] मैं कौन हूं, कहां से, किस दिशा से आया हूं? यहां से मृत्यु को प्राप्त कर किस दिशा में जाऊंगा? ये प्रश्न पूर्वजन्म के सिद्धांत को उजागर करते हैं। जैन आगमों में ऐसे अनेक कथानक हैं, जो पूर्वजन्म की स्मृति से जुड़े हुए हैं।

नंदीवृत्ति में पुनर्जन्म की सिद्धि में आचार्य मलयगिरि ने कहा है[12]—आत्मा स्थूल शरीर को छोड़ भवांतर में जाती है। उसके साथ दो सूक्ष्म शरीर सदा रहते हैं, फिर भी वह आते-जाते दृष्टिगोचर नहीं होती। किंतु, उसके लक्षण अवश्य प्राप्त होते हैं। तत्काल उत्पन्न कीट में भी अपने

शरीर के प्रति मोह होता है। जन्म के प्रारंभ में ही जीव में अपने शरीर के प्रति प्रतिबंध होता है। वह जन्म-जन्मांतर में शरीर के परिशीलन के अभ्यास के कारण ही होता है।

प्रायः सभी आत्मवादी दार्शनिक आत्मा की त्रैकालिक सत्ता स्वीकार करते हुए पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म को मान्य करते हैं।

उपनिषदों में आत्मा के अस्तित्व एवं पुनर्जन्म के विषय में सूक्ष्म चिंतन प्राप्त होता है। कठोपनिषद् में यम और नचिकेता का संवाद आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म की जिज्ञासा का स्वयंभू प्रमाण है।[13] श्वेताश्वेतर उपनिषद् में एक स्थान पर कहा है—आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है, न ही नपुंसक। जिस शरीर से युक्त होता है, उसे वैसा ही कहने लगते हैं। यही पुनर्जन्म है।[14] कैवल्योपनिषद् में[15] शरीर धारण करना पुनर्जन्म है। पुनर्जन्म को पुनर्भव, प्रेत्यभव, जन्मांतर, परलोक भी कहा जाता है। गीता में पुनर्जन्म को स्वीकार करते हुए कहा गया[16]—जैसे जीर्ण वस्त्रों को छोड़कर मनुष्य नवीन वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही आत्मा पूर्वशरीर को त्यागकर नवीन देह को धारण करती है। इस आत्मा को न शस्त्र छेद सकते हैं, न पानी आर्द्र बना सकता है और न ही हवा के द्वारा सुखाया जा सकता है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन भी पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। न्याय सूत्रकार ने कहा है—नव शिशु में हर्ष, भय, शोक आदि होते हैं। उसका कारण पूर्वजन्म की स्मृति है। नव शिशु स्तनपान करने लगता है, वह पूर्वभव में किए हुए आहार के अभ्यास से ही होता है।[17]

मीमांसा दर्शन में मन को पुनर्जन्म का कारण मानकर पुनर्जन्म की व्याख्या की गई है।

सांख्य-योग के अनुसार मृत्यु के बाद स्थूल शरीर नष्ट हो जाता है, किंतु सूक्ष्म शरीर विद्यमान रहता है। वही पुनर्जन्म का आधार है।[18]

महर्षि अरविंद ने पुनर्जन्म एवं क्रम-विकास में पुनर्जन्म को सिद्ध किया है।[19] बौद्धदर्शन में जातक कथाओं के माध्यम से पुनर्जन्मों की विस्तृत परंपरा का विवेचन किया गया है। अविद्या एवं तृष्णा को पुनर्जन्म के मुख्य चक्र कहा गया है।[20]

पाश्चात्य दर्शन और पुनर्जन्म

पाश्चात्य परंपरा भी आत्मा की अमरता को स्वीकृत करती है। प्लेटो ने अपने एक ग्रंथ में आत्मा की जीवन-यात्रा का वर्णन किया है। वे कहते हैं, 'The soul always weaves her garment a new. The soul has a natural strength which will hold out and be born many times.' आत्मा को सरल प्रत्यय निरूपित करते हुए आत्मा की अमरता में भी कई तर्क दिए हैं। ब्रिटिश दार्शनिक बर्कले ने भी प्लेटो के तर्कों का अनुसरण करते हुए आत्मा की अमरता स्वीकार की है।[21] स्पिनोजा, कांट, हेगेल, शोपनहावर आदि ने भी आत्मा की त्रैकालिकता स्वीकार की है।

आस्ट्रेलिया की जनजातियां और दक्षिण-पूर्वी अलास्का की ट्रिलगिट जाति मृत्यु में विश्वास करती हैं। मृत्यु के पर्दे को और पुनः जन्म लेने को वे मान्य करते हैं। नाइजीरिया की इब्बो जन-जाति मृतक की अंगुली अथवा भुजा पर पैनी धार वाले शस्त्र से चिह्न करती है और फिर नवजात शिशु में उस चिह्न की खोज करती है।[22]

आधुनिक काल[23] में अनेक संस्थाओं एवं वैज्ञानिकों ने आत्मा की अमरता के विषय में अनुसंधान किया है। इंग्लैंड में सन् 1882 में इस उद्देश्य को लेकर British Society for Psychical Research नामक संस्था की स्थापना की गई। पिछली शताब्दी में अमरीकी परामनोवैज्ञानिक डॉ. स्टीवेंशन ने भारतीय मनोवैज्ञानिक एच.एन. बनर्जी के सहयोग से विश्व के विभिन्न देशों में पुनर्जन्म का दावा करने वाले लोगों से मिलकर पुनर्जन्म की वास्तविकता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

सन् 1996 में अमेरिका के ड्यूक विश्वविद्यालय में चर्चित विषय—'क्या मृत्यु के पश्चात् भी जीवन है'—पुनर्जन्म की वास्तविकता की दिशा में सकारात्मक प्रयास था। डॉ. स्टीवेंशन ने पुनर्जन्म की सिद्धि के लिए विश्व-भर की यात्राएं कीं।

इस संदर्भ में उनके प्रथम ग्रंथ Twenty cases suggestive of Re-incarnation में भारत एवं पश्चिमी देशों की पुनर्जन्म से संबद्ध घटनाओं का उल्लेख है। डॉ. स्टीवेंशन ने पुनर्जन्म और वर्तमान जीवन की कई तुलनात्मक समानताएं भी एकत्रित की हैं।[24]

परामनोविज्ञान ने अतींद्रिय घटनाओं के माध्यम से मृत्यु के बाद के जीवन के अस्तित्व को स्वीकार किया है। अतिरिक्त संवेदी ज्ञान (Extra Sensory Perception) के अतिरिक्त पुनर्जन्म आदि के व्यापक संशोधन में आयु परावर्तन (Age Regration) का योगदान महत्त्वपूर्ण है। यह आज एक नवीन पद्धति के रूप में विकसित हो रही है।

इस पद्धति के तहत व्यक्ति को सम्मोहन द्वारा 'ट्रांस' में सुलाया जाता है। फिर भूतकाल की स्मृतियां जाग्रत होती हैं। अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त डॉ. एलेक्सेंडर केनन ने इस पर प्रयोग किए हैं। 'ट्रांस' में आत्मा की शक्तियां जाग्रत होती हैं। इन प्रयोगों में एक हजार से भी अधिक मामलों में ईस्वी सन् पूर्व अथवा दो हजार वर्ष पूर्व एवं कहीं-कहीं उससे भी अधिक वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर जन्म लेने की बात सामने आई।[25]

इन प्रयोगों से दो विशिष्ट तथ्य सामने आए हैं— 1. इस पृथ्वी के अलावा अन्यत्र भी जीव-सृष्टि है, 2. सूक्ष्म जगत् का अस्तित्व है।

डॉ. केनन के प्रयोगों[26] में एक व्यक्ति ने कहा—'मैं शुक्र पर हूं।' रूथ सिमोस नामक महिला ने कहा—'मैं 'एस्ट्रल' संसार में हूं। यहां प्रकाश ही प्रकाश है। थकान नहीं आती। खाने-पीने की भी आवश्यकता नहीं है।'

डॉ. केनन ने इसके आधार पर निष्कर्ष की भाषा में कहा—पृथ्वी पर केवल स्थूल देहधारियों का ही अस्तित्व नहीं है, सूक्ष्म जगत का भी अस्तित्व है।

विद्युत के आविष्कारक टी.ए. एडीसन ने भी मृत्यु के पश्चात् आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया था। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा—मृतात्माओं के साथ संपर्क करने के साधन तैयार किए जा सकते हैं।

फेडरिक जर्गेंशन नाम के स्वीडिश वैज्ञानिक ने सन् 1956 में मृतात्माओं की आवाजें रिकॉर्ड कीं। कई वैज्ञानिकों के सम्मुख कंपनी की सीलबंद खाली कैसेट में उन्होंने आवाजें रिकार्ड कीं। युनिवर्सिटी ऑफ फ्रेइबर्ग से संलग्न पेरासाइकोलोजिकल रिसर्च यूनिट के निदेशक डॉ. हॉन्स बेंडर ने जर्गेंशन के साथ जुड़कर इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने प्रेतात्माओं की आवाजों का पृथक्करण भी किया। उनमें कई आवाजें बच्चों की थीं, तो कई दुर्घटना में मृत्यु प्राप्त लोगों की। उन्हीं आवाजों में एक आवाज तानाशाह हिटलर की थी। अपने संदेश में उन्होंने कहा—मैं अपने पापों के कारण बहुत शर्मिंदा हूं। सिफिलीश रोग के कारण मेरी मानसिकता विकृत हो गई थी। मैंने निर्मम बन मानवों की हत्याएं करवाई। प्रो. बेंडर इन संशोधनों को न्यूक्लियर फिजिक्स के संशोधनों की अपेक्षा मानव-जाति के लिए अधिक उपयोगी समझते थे।

डॉ. कांस्टेन्टीव रुड़ीव ने सन् 1965 से 1968 तक अनेक वैज्ञानिकों के साथ मिलकर इस दिशा में विशिष्ट उपलब्धि हासिल की। 'Voices of the universe' में इस दृष्टि से काफी जानकारियां प्रदान की हैं। स्वीट्जरलैंड के भौतिक वैज्ञानिक डॉ. एलेक्जेंडर और हाइफ्रीक्वेन्सी इलेक्ट्रोनिक के विशेषज्ञ डॉ. रुडोल्फ ने साथ मिलकर प्रयोगशाला के कड़े नियंत्रण में वैज्ञानिक परीक्षणों के तहत करीब 1 लाख प्रेतात्माओं की आवाजें रिकॉर्ड कीं। जिसका विशद विवेचन The Inaudiate Made Audiable में प्रस्तुत किया है।

डॉ. रुडोल्फ ने मृतात्माओं एवं प्रेतात्माओं की आवाज की रिकॉर्डिंग करने वाले अत्यंत आधुनिक यंत्र 'गोनियोमीटर' का निर्माण किया। डॉ. रुडीव के प्रयोगों के बाद वैज्ञानिकों ने कहा—मृतात्माएं बहुत बार हमसे संपर्क करना चाहती हैं। संदेश भी भेजती हैं। गोनियोमीटर जैसे यंत्रों से हम उन्हीं की आवाज में संदेश ग्रहण कर रिकॉर्ड कर सकते हैं।[27]

इस विश्लेषण से यह प्रमाणित होता है कि पुनर्जन्म के संबंध में विश्व-भर में जिज्ञासा के स्वर पिछली सदी में बुलंदी से उभरे हैं। ट्रांस, एज रिग्रेशन, प्रेतात्मा की आवाजें—ये सब पुनर्जन्म के संवादी प्रमाण हैं। 'ट्रांस' जातिस्मृति ज्ञान का ही अपर नाम है। जैन शास्त्रों में पुनर्जन्म की स्मृति संबंधी पचासों प्रसंग उल्लिखित हैं। मृगापुत्र, भृगुपुत्र आदि को जातिस्मृति ज्ञान[28], मेघकुमार चंडकौशिक आदि को भगवान महावीर द्वारा पूर्वजन्म की स्मृति आदि अनेक उदाहरण जैन आगमों में प्राप्त होते हैं।

पुनर्जन्म का सिद्धांत आत्मा की त्रैकालिक सत्ता का स्वयंभू साक्ष्य है। अनादिकाल से जन्म-मरण की यह परंपरा चालू है। समस्त कर्मावरणों का नाश होने पर ही इस परंपरा का विराम होता है। ❖

संदर्भ

1. स्थानांग 1/1
2. प्रज्ञापना 23/39
3. जैन तत्त्व प्रवेश प्रथम 16/2/5
4. जैन तत्त्व प्रवेश प्रथम 16/2/5
5. उत्तरज्झयणाणि 36/204
6. स्थानांग 9/40
7. जैन दर्शन मनन और मीमांसा, पृ. 297
8. जैन दर्शन और अनेकांत
9. भगवई विआहपण्णत्ति 2/12
10. दसवेआलियं 8/3

11. आयारो 1/1
12. नंदी, मलयवृत्ति पत्र 4/5
13. कठोपनिषद् 1/20, 21
14. श्वेताश्वेतरोपनिषद 5/10
15. कैवल्योपनिषद 1/10
16. गीता 2/22, 23
17. न्यायसूत्र 3/1/11, 12
18. भारतीय दर्शन, पृ. 324-16 (डॉ. देवराज)
19. पुनर्जन्म एवं क्रमिक विकास, पृ. 36
20. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ. 85
21. पाश्चात्य दर्शन का समस्यात्मक विवेचन, पृ. 171-174
22. धर्मयुग, पृ. 8 (23 जून, 1985)
23. पाश्चात्य दर्शन का समस्यात्मक विवेचन, पृ. 172-173
24. After Life, P. 206
25. विज्ञान एवं अध्यात्म, पृ. 32-33
26. वही, पृ. 47-48, 52-53
27. गुजरात समाचार 13/9/98 (रविपूर्ति)
28. उत्तरा. 14, 19

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-कविता
भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति रचनाकार
पहले से ही अपने पास रखें

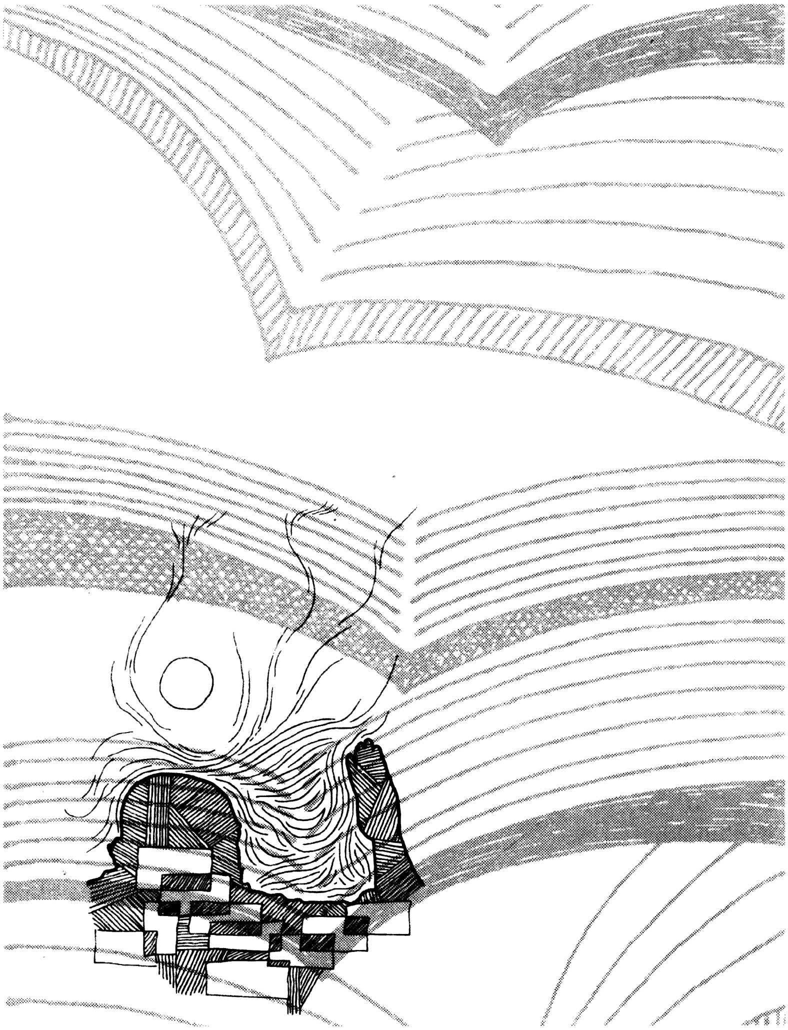

अनुभूति

मनुष्य यदि एक सृजनशील प्राणी है—जो कि वह है—तो उसकी इस सृजनशीलता की हर स्तर पर अभिव्यक्ति स्वाभाविक है। यदि कोई व्यक्ति कलाकार, लेखक या वैज्ञानिक आदि नहीं है तो भी वह सृजनशील हो सकता है। न केवल यह कि उसका प्रत्येक कर्म सृजन और प्रत्येक सामाजिक रिश्ता—प्रेम, मैत्री, रक्त एवं भावनात्मक संबंध आदि—एक सृजनात्मक रिश्ता हो सकता है, बल्कि अपने परिवेश—प्राकृतिक एवं सामाजिक दोनों—के साथ भी उसका रिश्ता अनिवार्यतः एक सृजनात्मक रिश्ता होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति, जाति या समाज के सुसंस्कृत होने की एक प्रमुख पहचान यही है कि उसके सभी रिश्तों और व्यवहार में इस सृजनात्मकता का कितना उत्कर्ष होता है।

—**नन्दकिशोर आचार्य**

देश-काल सापेक्षता : चिंतन और परिवर्तन

आचार्यश्री महाप्रज्ञ

धर्म शाश्वत तत्त्व है। हर धार्मिक उस शाश्वत तत्त्व की उपासना करने के लिए अपने जीवन का अर्घ्य चढ़ाता है, साधना करता है। पर, यदि धर्म भी परिवर्तनशील है तो हम फिर शाश्वत की बात क्यों करें? इसमें कोई संदेह नहीं कि धर्म शाश्वत है। जो शाश्वत है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। किसी भी देश और काल में धर्म में परिवर्तन नहीं हो सकता।

प्रश्न है—धर्म क्या है? धर्म है अध्यात्म—आत्मा की पवित्रता, आत्मा की निर्मलता, आत्मा का सहज गुण। यह कभी नहीं बदलता। अहिंसा शाश्वत धर्म है। आज तक किसी ने इसे नहीं बदला। राग-द्वेष न करना अहिंसा है। यह नियम बदला नहीं जा सकता। जो स्वाभाविक होता है, उसे दुनिया में कोई बदल नहीं सकता। बदले वे जाते हैं जो कृत हैं, किए हुए हैं। तर्कशास्त्र कहता है—**यत्-यत् कृतकं तत्-तत् अनित्यम्**—जो-जो कृतक है, वह-वह अनित्य है, यह अकाट्य नियम है **यत्-यत् अकृतकं तत्-तत् नित्यम्, यथा आकाशः**—जो अकृतक है, वह नित्य है जैसे आकाश। आकाश नित्य है। उसे कभी बदला नहीं जा सकता। इतनी तेज सर्दी है, आकाश में कोई परिवर्तन नहीं आता। हमारी चमड़ी फट जाती है, बिवाई हो सकती है, पर आज तक कभी आकाश नहीं फटा, उसके बिवाई नहीं हुई। इतनी तेज वर्षा होती है, आकाश का कुछ नहीं बिगड़ता। इतनी भीषण गर्मी पड़ती है, आकाश कभी गर्म नहीं होता। कोई परिवर्तन नहीं होता उसमें। क्योंकि वह नित्य है, शाश्वत है। जैसे आकाश नित्य है, वैसे ही आत्मा भी नित्य है, चेतना भी नित्य है। उसे कभी बदला नहीं जा सकता। आज तक दुनिया में चेतन अचेतन नहीं बना और अचेतन चेतन नहीं बना। दोनों में अत्यंताभाव है, एक का दूसरे में अत्यंत अभाव है। एक को दूसरे में कभी नहीं बदला जा सकता।

“*जहां अध्यात्म का प्रश्न है, आंतरिक साधना का प्रश्न है—वहां बाहरी कसौटी का कोई अर्थ नहीं होता। वहां व्यक्ति की साधना केवल अपने लिए और अपने भीतर जाने के लिए होती है, अपने-आप को ही देखने के लिए होती है। वहां न कोई चर्चा, न कोई समालोचना, न कोई समीक्षा, न प्रश्न और न उत्तर, न समझना और न समझाना, वहां नितांत व्यक्ति की ही बात होती है।*

तेरापंथ स्थापना दिवस पर विशेष

अध्यात्म ही वास्तव में धर्म है। शुद्ध चेतना का व्यापार, शुद्ध चेतना का प्रयोग, जीवन के रागद्वेष-शून्य क्षण—ये सब धर्म हैं। धर्म की इस भाषा को कोई नहीं बदल सकता।

हम यह न भूलें कि जहां एक धार्मिक व्यक्ति रहता है, दो रहते हैं,

तीन रहते हैं, चार रहते हैं, दस रहते हैं—वहां धार्मिकों का भी एक समाज बन जाता है, समूह बन जाता है, गण और संघ बन जाता है। साधुओं के भी गण हैं, संघ हैं। हमारे साधुओं का गण 'भिक्षुगण' कहलाता है, 'भिक्षु-शासन' कहलाता है।

प्राचीन साहित्य में तीन शब्द आते हैं—कुल, गण और संघ। कुल छोटा होता है। गण उससे बड़ा होता है और संघ उससे भी बड़ा। एक शब्द है—शासन। शासन का तंत्र भी होता है। वह बदलता है। व्यवस्था बदलती है। कुल, गण और संघ के नियम भी बदलते हैं, क्योंकि नियम सुविधा के लिए बनाए जाते हैं, उपयोगिता के लिए बनाए जाते हैं। जब उनकी उपयोगिता या प्रयोजन समाप्त हो जाता है, तब वे नियम बदल दिए जाते हैं, नये नियम बना दिए जाते हैं। व्यवस्थाएं निर्मित होती हैं, बदलती हैं, परिवर्तित होती हैं।

अभी हम उस धर्म की चर्चा नहीं कर रहे हैं जो शाश्वत है। हम धर्म के परिपार्श्व में होने वाली व्यवस्थाएं, होने वाले नियम और अनुशासन की चर्चा कर रहे हैं। इनमें परिवर्तन आ सकता है, आया है और आएगा भी। इतिहास को जानने वाला यह मानेगा कि नियम या अनुशासन कभी एक-सा नहीं रह सकता। जो नियम बनता है, वह देश-काल-सापेक्ष होता है।

अध्यात्म देश-काल-सापेक्ष नहीं होता। उसमें परिवर्तन नहीं आ सकता। संगठन में व्यवस्थाएं होती हैं। उन व्यवस्थाओं में परिवर्तन आया है, आता है और आता रहेगा। तब तक परिवर्तन आता रहेगा, जब तक एक धार्मिक में चिंतन की धारा बनी रहेगी। कोई भी धार्मिक चिंतन-शून्य नहीं होता। वह परिस्थितियों की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता। वह परिस्थितियों के परिपार्श्व में जीता है। वह सारे परिवेश के संदर्भ में, देश-काल के आधार पर अपने जीवन की समाचारी का नियमन करता है। यह समाचारी क्या है? एक होता है धर्म और एक होती है समाचारी। धर्म होता है आत्मा का, व्यक्ति का। समाचारी होती है संघ की। उदाहरण से इसे समझें।

एक समय था; मुनि की समाचारी यह थी कि वह चिकित्सा न कराए। यह समाचारी निश्चित थी। इसीलिए बाईस परीषहों में एक परीषह है—**तेगिच्छं**—चिकित्सा। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—**तेगिच्छं नाभिनंदेज्जा**—मुनि चिकित्सा की मन से भी वांछा न करे। उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवें अध्ययन में एक सुंदर संवाद उपलब्ध है। मृगापुत्र दीक्षा लेने के लिए तैयार होता है। माता-पिता उसे समझाते हुए कहते हैं—'पुत्र! तुम सुखोचित हो। तुम्हारा शरीर इतना कोमल और इतना मृदु है कि तुम प्रव्रज्या-मार्ग में आने वाले भीषण कष्टों को कैसे सहन करोगे?' उन्होंने इतनी बातें बताईं कि कोई भी आदमी उन्हें सुनकर साधु बनने से विमुख हो सकता है। मृगापुत्र अपनी भावना में दृढ़ था। वह दीक्षा से विमुख नहीं हुआ। अंत में माता-पिता ने कहा—'पुत्र! देखो मुनि-जीवन अप्रतिकर्म का जीवन है। वहां बीमारी हो जाने पर चिकित्सा नहीं कराई जा सकती। तुम कैसे रह सकोगे?' मृगापुत्र ने कहा—'तात! जंगल में हरिण घूमता है। वह कभी बीमार भी होता होगा? बीमार हो जाने पर वह एक वृक्ष की छांह में बैठ जाता है। जब ठीक होता है तब खाने-पीने के लिए चल देता है। वैसे ही मैं भी **मिगचारिअं चरिस्सामि**—मृगचारिका का आचरण करूंगा।'

एक परंपरा ऐसी रही है, एक जमाना ऐसा रहा है कि मुनि कभी चिकित्सा न कराए, क्योंकि जब शरीर को छोड़ ही दिया तो फिर चिकित्सा से क्या प्रयोजन? पर, समय बदला। चिंतन में परिवर्तन आया। परिवर्तन यह आया कि जो 'जिनकल्प' की साधना कर रहा है, जो 'जिनकल्पी' है, वह चिकित्सा नहीं करा सकता, किंतु जो 'स्थविरकल्पी' है—वह चिकित्सा करा सकता है, किंतु सावद्य चिकित्सा नहीं करा सकता। संभव है, छेद सूत्रों के समय में यह अपवाद भी निर्मित हो चुका था कि जो सावद्य चिकित्सा कराएगा, उसे प्रायश्चित्त आएगा। सावद्य चिकित्सा करानी नहीं है, किंतु बीमार साधक धृति से दुर्बल है, कष्ट को सहन नहीं कर सकता, ऐसी स्थिति में यदि वह अपवाद मार्ग का सेवन करता है तो उसे अमुक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

मुनि आपरेशन कराते हैं। प्रश्न हो सकता है कि वे आपरेशन कैसे करा सकते हैं? प्रश्न ठीक है। वे आपरेशन नहीं करा सकते। किंतु, यदि धृति नहीं है, सहन करने की शक्ति नहीं है, सहन नहीं कर सकता—इस अधृति की स्थिति में वह आपरेशन कराता है। यह अपवाद मार्ग का सेवन है। इसके लिए प्रायश्चित्त की विधि है।

छेद सूत्रों की मुख्य बात है कि मुनि को जो काम नहीं करना है, वह काम यदि कोई मुनि कर लेता है तो उसके पीछे कारण होता है। या तो प्रमाद होता है, या अधृति होती है। अधृति का अर्थ है—धैर्य न रख पाना, सहन नहीं कर सकना।

दोष का सेवन दो प्रकार से होता है। साधक या तो दर्प (प्रमाद) के कारण दोष का सेवन करता है, या अधृति के कारण दोष का सेवन करता है। दोष-सेवन को प्रतिसेवना कहते हैं। प्रतिसेवना के दो प्रकार हैं—दर्प प्रतिसेवना और कल्प प्रतिसेवना। दर्प प्रतिसेवना का अर्थ है—दर्प के कारण दोष का सेवन करना और कल्प प्रतिसेवना का अर्थ है—जान-बूझकर सहन न कर सकने के कारण दोष का सेवन करना।

हम जानते हैं कि साधु को रात में न कुछ खाना है और न कुछ पीना है। किंतु, कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी मुनि को रात में भयंकर प्यास लग गई और वह उस प्यास-जन्य कष्ट को सहने में असमर्थ है, उसमें धृति नहीं है—वह पानी पी लेता है। उसे प्रायश्चित्त प्राप्त होता है।

मुनि जंगल में से गुजर रहे हैं। वे प्यास से क्लान्त हो गए। भयंकर प्यास लगी है। कुछ मुनियों में धृति है। वे उस कष्ट को प्रसन्नतापूर्वक सह लेते हैं, कुछ मुनि उस कष्ट को सहन नहीं कर पाते। यह जानते हुए भी कि मुनि को कच्चा पानी नहीं पीना चाहिए, वे तालाब या झरने का पानी पी लेते हैं। उन्हें चातुर्मासिक प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह 'चातुर्मासिक' शब्द प्रायश्चित्त की एक संज्ञा है।

मुनि रात को दवा नहीं ले सकता, यह सामान्य विधि है। कोई मुनि आपरेशन कराता है। डॉक्टर के निर्देशानुसार वह अत्यंत आपेक्षिक स्थिति में रात में दवा ले लेता है। वह प्रायश्चित्त का भागी होता है। उसे प्रायश्चित्त आता है। सारे प्रायश्चित्त निश्चित हैं—अमुक कार्य के लिए अमुक प्रायश्चित्त और अमुक कार्य के लिए अमुक प्रायश्चित्त।

आप पूछेंगे कि पहले तो ऐसा नहीं होता था, अब कैसे हो रहा है? यह जटिल प्रश्न है। सामान्यतया हर आदमी यह सोचता है कि पहले ऐसा नहीं होता था, आज हो रहा है। या पहले ऐसा होता था, आज नहीं हो रहा है। सामान्य आदमी इसी आधार पर निर्णय करने का प्रयत्न करता है। यह आधार उचित नहीं है। इसका कोई अर्थ नहीं कि पहले होता था, आज नहीं हो रहा है, या पहले नहीं होता था और आज हो रहा है। हमारे चिंतन का आधार यह होना चाहिए कि आज जो हो रहा है—वह आगम से सम्मत है या नहीं? हमारी सारी परम्पराओं का एकमात्र आधार है—आगम। वैदिक परंपरा के निर्णय का मानदण्ड होगा कि यह तथ्य वेद-विहित है या नहीं? इसका समर्थन वेदों से होता है या नहीं? बौद्ध अपनी परंपरा के लिए पिटकों का समर्थन खोजेंगे। इसी प्रकार जैन परंपरा का कोई विधि-विधान या आचरण होगा तो हमें यह खोजना होगा कि यह कार्य आगमों से समर्थित है या नहीं? आगमों में इसकी चर्चा है या नहीं? यदि है, तो वह उचित है, चाहे उस परंपरा का हजार वर्षों में भी प्रयोग न किया गया हो, उसका आज भी प्रयोग किया जा सकता है। एक उदाहरण आपके समक्ष प्रस्तुत करूं। संभव है, आप उसे सुनकर अचंभा करेंगे। वैसी स्थिति आप आंखों से देख लें तो आपके मन में अधृति उत्पन्न हो सकती है, मन में अनेक प्रकार के विचार आ सकते हैं।

किसी साध्वी के पैर में कांटा लग गया। दूसरी साध्वी उसे निकाल नहीं पाती। तब साधु उस कांटे को निकाले। इसमें कोई दोष नहीं है। किंतु, यदि किसी साधु को साध्वी का कांटा निकालते कोई गृहस्थ आज देख ले तो इतना ऊहापोह हो जाए कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इन वर्षों में यह काम नहीं पड़ा, परंतु यह निर्दोष है—क्योंकि आगम-सम्मत है। आगम में यह आज्ञा है कि साध्वी के कोई कांटा चुभ जाए, साध्वी निकाल न सके तो साधु उस कांटे को निकाले।

शास्त्र का विधान है कि साध्वियां अस्वस्थ हों, भयभीत हों, कठिनाई में हों तो साधु, दिन हो या रात, उनके स्थान पर जाए, उनकी परिचर्या करे, उन्हें संभाले। यही बात साधुओं के विषय में है। साधुओं में वैसी स्थिति हो तो साध्वियां उनकी सार-संभाल करें। एक बार बीदासर में ऐसा हुआ था। श्रीमज्जयाचार्य वहां थे। उनको छोड़कर सभी साधु मूर्च्छित होते चले गए। एक विचित्र घटना घटित हुई। उस समय सूर्योदय से कुछ पूर्व साध्वियां वहां आईं और साधुओं की परिचर्या की। मूर्च्छित साधुओं को अंदर ले गईं। प्रश्न हो सकता है कि जब सौ वर्षों में ऐसा नहीं हुआ तो फिर जयाचार्य के समय में ही ऐसा क्यों हुआ? यह प्रश्न उचित नहीं कहा जा सकता। सौ वर्षों में जो घटना घटित नहीं हुई, वह आज हो सकती है और जो आज होती है, वह आगे पांच सौ वर्षों में भी न हो।

मैं तो यह मानता हूं कि अच्छा हुआ कि मूल सूत्रों में अपवादों का उल्लेख हो गया। यदि ये अपवाद सूत्र-ग्रंथों में ही उल्लिखित होते, मूल सूत्रों में उनका उल्लेख नहीं होता तो शायद हम कह देते कि शिथिलाचारियों ने ऐसे अपवाद चला दिए। किंतु, वे मूल आगमों में हैं, अतः कोई कह नहीं सकता कि ये अपवाद शिथिलाचारियों के चलाए हैं।

छेद सूत्रों में इतने विचित्र अपवाद पड़े हैं। उनका उल्लेख मात्र एक संकेत के रूप में किया गया है। इन संदर्भों में यदि हम सोचें तो यह प्रश्न ही नहीं होता कि जो काम हमने आज तक नहीं किया, उसे आज क्यों कर रहे हैं? चिंतन का बिंदु यह होना चाहिए कि जो किया जा रहा है, वह आगम-सम्मत है या नहीं। बस, इससे आगे हमारा तर्क नहीं जाना चाहिए। अन्यान्य तर्क चिंतन को विकृत या धुंधला बनाते हैं, सत्य का मार्गदर्शन नहीं करते।

चिकित्सा का प्रश्न चल रहा था। गुरुदेव श्री तुलसी ने एक विधि की घोषणा की—यदि विशेष प्रयोजनवश कोई बड़ा आपरेशन कराए और बड़े दोष के लगने की संभावना हो, तो वह काम भिन्न समाचारी में किया जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि वह साधक संघ की समाचारी से भिन्न समाचारी में चला जाता है। इससे उसका साधुपन नहीं चला जाता। उसे केवल प्रायश्चित्त प्राप्त होता है। यह केवल विधि का प्रयोग है, परिवर्तन नहीं। परिवर्तन तो तब हो कि छेद सूत्रों में ऐसी बातों का उल्लेख न हो।

छेद सूत्र में उल्लेख है कि मुनि को गृहस्थ से अमुक-अमुक कार्य नहीं कराने चाहिए। यदि वह कराए तो प्रायश्चित्त का भागी होता है। यह प्रायश्चित्त जान-बूझकर कराए जाने वाले कार्यों के लिए ही तो आता है। अनजानी बात के लिए यह प्रायश्चित्त नहीं है। कोई आपरेशन कराता है, वह अनजाने में तो नहीं कराता, समझ-बूझकर कराता है—उसे प्रायश्चित्त भी आता है।

भगवती सूत्र में एक चर्चा है। एक मुनि खड़ा है। वह नग्न है। उसका मस्सा नीचे लटक रहा है। किसी वैद्य ने उसे देखा। उसके मन में दया आ गई। उसने सोचा—मुनि है। ध्यान कर रहा है। इसका मस्सा इसे कष्ट दे रहा है। कौन इसकी चिकित्सा करेगा? वैद्य का मन करुणा से भर गया। उसने मुनि को सुला दिया। कुछ पूछा नहीं। उसने मस्से को काट दिया। अब प्रश्न होता है कि इस क्रिया से मुनि को क्या हुआ और वैद्य को क्या हुआ? इसका उत्तर यह है—मुनि के धर्मकार्य में विघ्न उपस्थित हुआ। उसके ध्यान में बाधा आ गई। यदि वह मुनि उस क्रिया का अनुमोदन नहीं करता है, समर्थन नहीं करता है तो उसको कोई दोष नहीं लगता। उसके केवल धर्मांतराय हुआ। आप कहेंगे कि अनुमोदन बाकी कैसे रह गया? काम तो सारा संपन्न हुआ, फिर अनुमोदन शेष कैसे रहा? मुनि ध्यान में थे और संपूर्ण अवधि तक वैसे ही ध्यान में रहे। मन से भी शल्यक्रिया का अनुमोदन नहीं किया। जो ऐसा करता है, उसके केवल धर्मांतराय होता है, कोई दोष नहीं लगता। यह भगवती सूत्र का स्पष्ट उल्लेख और विधान है।

इन संदर्भों से हम अनुभव करेंगे कि छेद सूत्रों के विधि-विधान और परंपराएं बहुत ही विचित्र और गूढ़ रही हैं। उनके आधार पर परंपराओं में परिवर्तन होता रहता है। जब किसी कार्य की अपेक्षा होती है, उसका आचरण कर लिया जाता है। अपेक्षा नहीं होती है तो शताब्दियों में भी उसका आचरण नहीं होता।

मूल कठिनाई एक है। उसे हम समझें। वह कठिनाई यह है कि आचार्यों ने यह कह दिया कि छेद सूत्रों की जो समाचारी है, प्रायश्चित्त के जो विधि-विधान हैं—उन्हें किसी गृहस्थ को तो क्या, किसी मुनि को भी सारे-के-सारे नहीं बताने चाहिए। किंतु, जो मुनि गीतार्थ हैं—उनके आदेशानुसार आचरण कर लेना चाहिए। मुनि भी तीन प्रकार के होते हैं—

1. **परिणत**––जिसका ज्ञान परिपक्व है, जो उत्सर्ग और अपवाद को जानता है, जो नयदृष्टि से संपन्न है।

2. **अपरिणत**––जिसका ज्ञान परिपक्व नहीं है, अधूरा है, जो आगम के रहस्यों को नहीं जानता।

3. **अतिपरिणत**––जो परिपक्व नहीं है, पर अपने आपको परिपक्व मान लेता है।

आगमों का विधान है कि अतिपरिणत मुनि को भी छेद सूत्रों के विधि-विधान नहीं बताने चाहिए। कहा है—

आमे घडे निहत्तं जहा जलं तं घडं विणासेइ।
तह सिद्धन्तरहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ।।

—जैसे कच्चे घड़े में डाला हुआ जल घड़े को नष्ट कर देता है और स्वयं भी नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अपरिणत मुनि को यदि छेद सूत्रों के रहस्य दे दिए जाएं तो वह स्वयं भी नष्ट हो जाता है और ज्ञान को भी विकृत बना डालता है। अतिपरिणत मुनि भी खतरनाक होता है। वह अपने-आप को बहुत मान लेता है। संस्कृत में ऐसे व्यक्ति को अर्द्धदग्ध या पंडितमानी कहा गया है। वह यथार्थ में पंडित या ज्ञानी नहीं है, किंतु अपने-आप को पंडित या ज्ञानी मान लेता है। उसे भी छेद सूत्रों के रहस्य नहीं देने चाहिए, क्योंकि वह उनका दुरुपयोग कर डालता है। उसका तर्क होता है कि जब ऐसा करने का विधान है तो फिर ऐसा क्यों नहीं किया जा सकता? ऐसा भी किया जा सकता है।

वह एक विधान के आधार पर ऐसे अनेक विधि-विधान गढ़ लेता है, जो उसमें स्थान-स्थान पर छेद उत्पन्न कर देते हैं। उसको भी रहस्य नहीं बताने चाहिए। रहस्य केवल उसी व्यक्ति को बताने चाहिए जो यथार्थ रूप में परिणत है। जो न अ-परिणत है और न अति-परिणत, उसे ही रहस्य देने चाहिए। वही मुनि गीतार्थ है जो ठीक निर्देश के अनुसार आचरण करता है, उसे ही रहस्य जानने का अधिकार है।

मुनियों की बात को मैं छोड़ देता हूं। श्रावक भी इन सब विधि-विधानों की आलोचना करते हैं। मैं मानता हूं कि आलोचना कोई बुरी बात नहीं है। वह बुरी बात तब बन जाती है, जब अनधिकृत व्यक्ति आलोचना में पड़ जाता है। मेरा अधिकार हो और मैं अधिकार के साथ जिसका प्रतिपादन कर सकता हूं, उसके बारे में समीक्षा करना मेरे अधिकार की बात हो सकती है। किंतु, जिसका मैं पूर्व-पश्चिम भी नहीं जानता, जिसका मैं 'क', 'ख' भी नहीं जानता और उसकी समीक्षा-मीमांसा करने लगूं तो उस विषय के साथ न्याय नहीं कर पाऊंगा। यही नहीं, मैं अपनी मनीषा और बुद्धि के साथ भी न्याय नहीं कर पाऊंगा। यह अन्याय होगा। इसलिए आचारशास्त्र के, समाचारी के और परंपरा के जितने भी विषय हैं, उनके निर्णय का दायित्व हम आचार्य पर और संघ पर छोड़ दें तो तर्कपूर्ण और विचारपूर्ण होगा।

तेरापंथ धर्मसंघ में परिवर्तन की भी एक पद्धति है। गुरुदेव श्री तुलसी के समक्ष कोई प्रश्न आता तो गुरुदेव उस पर चिंतन करते, मनन करते और कुछेक मुनियों को उस विषय पर चर्चा करने लिए फरमा देते। विगत वर्षों में होने वाले सारे परिवर्तनों के पीछे यही प्रक्रिया रही है। माघ महोत्सव के समय जब अधिकांश मुनि उपस्थित होते हैं, तब अनेक प्रश्न चर्चे जाते हैं। वर्ष-भर के चिंतनीय और चर्चनीय विषयों की सूची बना ली जाती है। फिर वह मुनि-समिति उन विषयों पर चर्चा करती है। निष्कर्ष गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत होते। जो निष्कर्ष गुरुदेव को जंच जाते, उनकी घोषणा कर देते। उस दिन से वह विषय हमारी समाचारी का अंग बन जाता है। समूचे संघ में वह विधि प्रचलित हो जाती है।

समूचे संघ के द्वारा और गुरुदेव की घोषणा के द्वारा जो बात समाचारी का अंग बनती, हमें यह विश्वास कर चलना चाहिए कि कोई अचानक ही एक विस्फोट की भांति वह अवतरित नहीं होती, किंतु चिंतनपूर्वक, सूझबूझपूर्वक, देश-काल की सारी मर्यादाओं और परिस्थितियों को देखकर, आगम और परंपरा की पूरी मीमांसा करने के बाद ही वह बात हमारे सामने आती है। यदि हम बहुत गहराई में न जा सकें तो कम-से-कम उसका अधिक भार न ढोएं। हमें इस विश्वास के साथ चलना चाहिए कि संघ के द्वारा जो बात सम्मत हो गई है, वह साधुत्व की मर्यादा में दोष उत्पन्न करने वाली नहीं है।

जहां अध्यात्म का प्रश्न है, आंतरिक साधना का प्रश्न है—वहां बाहरी कसौटी का कोई अर्थ नहीं होता। वहां व्यक्ति की साधना केवल अपने लिए और अपने भीतर जाने के लिए होती है, अपने-आप को ही देखने के लिए होती है। वहां न कोई चर्चा, न कोई समालोचना, न कोई समीक्षा, न प्रश्न और न उत्तर, न समझना और न समझाना, वहां नितांत व्यक्ति की ही बात होती है।

जब हम व्यवहार की बात करते हैं, जब हम एक संगठन और संघ की बात करते हैं, जब हम मर्यादा और समाचारी की बात करते हैं, जब हम एक नियमावली और एक आचार-संहिता की बात करते हैं—तब वहां समझने और समझाने की बात आती है, शास्त्र की बात आती है, परंपरा की बात आती है। वहां इन सबकी समीक्षा प्राप्त होती है। इन सारे प्रश्नों के लिए आपके सामने एक-दो कसौटियां रखी जा सकती हैं। यदि इन कसौटियों पर ध्यान दें, तो बहुत-सारे प्रश्न स्वयं समाहित हो जाएंगे। पहली कसौटी यह है कि हम इस तथ्य को समझने का प्रयत्न करें कि वह आगम के द्वारा सम्मत है या नहीं। यह सबसे बड़ी कसौटी है। यदि वह बात आगमसम्मत है तो चाहे वह व्यवहार में आयी हुई हो या न हो, कोई कठिनाई नहीं है। दूसरी बात यह है कि उसे हमने ठीक से समझा या नहीं।

समय-समय की मनोवृत्ति भिन्न-भिन्न होती है। एक समय था कि जैन मुनि स्थान-स्थान पर जाकर प्रवचन नहीं करते थे। हमारे यहां भी यह प्रवृत्ति प्रचलित थी। हमारे साधु-साध्वी भी अन्यत्र जाकर प्रवचन नहीं करते थे। पूछने पर कहते—कुआं प्यासे के पास नहीं जाता, प्यासा कुएं के पास आता है। हमें कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। जिसे सुनने की प्यास होगी, वह स्वयं यहां आएगा। अणुव्रत आंदोलन का प्रवर्तन हुआ। स्थान-स्थान पर आयोजन होने लगे। साधु-साध्वी विभिन्न स्थानों में प्रवचन करने के लिए जाने लगे। गुरुदेव श्री तुलसी के सामने प्रश्न आया। गुरुदेव ने कहा—प्यासा कुएं के पास नहीं जाता है,

यह पुराने जमाने की बात थी। आज तो प्यासे के पास कुआं जाता है। घर-घर में 'ट्यूबवेल' और नल लगे हुए हैं। इसका तात्पर्य हुआ कि कुआं प्यासे के पास जा रहा है। यह क्या, आने वाले युग में और भी आश्चर्यकारी बातें सामने आएंगी। ऐसी कल्पनाएं हो चुकी हैं, सिद्धांत विकसित हो चुके हैं।

इन सारे परिवर्तनों में हम यह अवश्य देखते हैं कि व्यवहार के स्तर पर, देश-काल-सापेक्ष की सीमा में यदि कोई परिवर्तन आता है—वह न अवांछनीय है, न असंभव है, न असम्मत होता है और न कोई शास्त्र या परंपरा के विरुद्ध होता है। मात्र इतना-सा विचार आता है कि पहले ऐसा था, आज ऐसा है। मैं समझता हूं कि आचार्य भिक्षु और श्रीमज्जयाचार्य ने हमारा जो मार्गदर्शन किया है, वह यदि नहीं होता तो शायद कुछ कठिनाइयां होतीं। किंतु, उन्होंने सुंदर मार्गदर्शन दिया, जिसके सहारे हम सारी कठिनाइयों को पार करने में समर्थ हैं।

आचार्य भिक्षु ने कहा—'मैं जो कर रहा हूं, वह अपने व्यवहार से शुद्ध जानकर कर रहा हूं। हो सकता है कि भविष्य में होने वाले साधुओं, बहुश्रुत मुनियों को वह ठीक न लगे, तो वे उसे बदल सकते हैं, छोड़ सकते हैं।' यह बहुत बड़ी बात कही है—आचार्य भिक्षु ने। ऐसे सत्य-शोधक विरले ही हुए हैं, जो यह बात कह सकें कि मैं जो कर रहा हूं, वह यदि ठीक न लगे तो उसे छोड़ देना। मेरा कोई आग्रह नहीं है उसे वैसा ही रखने का। ऐसे व्यक्ति तो बहुत हुए हैं जिन्होंने कहा कि मैं जो रेखा खींच रहा हूं, उसे किसी ने बदल दिया तो वह गुनहगार होगा। किंतु आचार्य भिक्षु जैसे सत्यान्वेषक, सत्य-शोधक नहीं मिलेंगे। उन्होंने कहा—मैं जो-कुछ कर रहा हूं, उसे मैं व्यवहार में शुद्ध जानकर कर रहा हूं। किंतु बहुश्रुत मुनियों को यह ठीक नहीं लगे तो वे इसे छोड़ दें, बदल दें। ऐसी बात वही व्यक्ति कह सकता है जो सत्य के लिए सर्वथा समर्पित होता है।

श्रीमज्जयाचार्य ने कुछ बातें बदल दीं, जो आचार्य भिक्षु के समय में प्रचलित थीं। बीसों बातें बदल दीं। किसी व्यक्ति ने पूछा—'महाराज! मन में एक प्रश्न आता है कि जो काम आचार्य भिक्षु करते थे; उन्हें आपने छोड़ दिया। आपने इनको छोड़ा है तो सावद्य जानकर या अकरणीय जानकर छोड़ा है। केवल ऐसे ही नहीं छोड़ा है। फिर भी मन में शंका उत्पन्न होती है कि या तो इन बातों का आचरण न करने वाले स्वामीजी साधु नहीं थे, या आप इनका आचरण करने वाले साधु नहीं हैं। दोनों में से एक साधु हैं। दोनों नहीं हो सकते। या तो वे दोषी थे, या आप दोषी हैं। दोनों निर्दोष नहीं हो सकते।' जयाचार्यजी ने सुना और कहा—'दोनों दोषी नहीं हैं। दोनों निर्दोष हैं। दोनों उचित हैं। स्वामीजी अपने व्यवहार में शुद्ध जानकर उनको करते थे और मैंने अपने व्यवहार में शुद्ध जानकर उन्हें छोड़ा है। दोषी कोई नहीं।'

आचारांग सूत्र (596) का एक वाक्य है—**समियंति मण्णमाणस्स समिया वा, असमिया वा, समिया होइ उवेहाए। असमियंति मण्णमाणस्य समिया वा, असमिया वा, असमिया होइ उवेहाए।**

—संघ अपने व्यवहार में शुद्ध जानकर कोई आचरण करता है, आचार्य अपने व्यवहार में शुद्ध जानकर किसी आचरण का प्रवर्तन करते हैं, फिर चाहे वह किसी को असम्यक् ही लगे—वह सम्यक् ही है। यदि सोचे-समझे और ठीक निर्णय लिए बिना, ठीक व्यवस्था किए बिना, चिंतन किए बिना कोई काम कर लिया—फिर चाहे वह सम्यक् ही हो, वह असम्यक् ही होगा, दोषपूर्ण ही होगा। ऐसा आचरण मुनि को नहीं करना चाहिए। आज यहां कोई केवली नहीं है, सर्वज्ञ नहीं है। व्यवहार के आधार पर निर्णय किया जाता है। यदि व्यवहार में ठीक है, सम्यक् है, तो वह आचरण सम्यक् है। वह आचरण दोषपूर्ण नहीं होता। इस सिद्धांत को हम ठीक से समझें। इन बातों पर हम मनन करें, इनका विश्लेषण करें तो होने वाले परिवर्तनों के विषय में मन में कोई उलझन नहीं आएगी। इससे मार्ग स्पष्ट होगा। जिस देश-काल में हम जी रहे हैं, उस देश-काल के अनुसार यदि कोई व्यवस्था परिवर्तन मांगती है और जो परिवर्तन अपेक्षित है, तो उस परिवर्तन को करने में कोई दोष नहीं है। कई बार ऐसा होता है कि देश-काल की अपेक्षा के अनुसार औचित्यपूर्ण वांछनीय परिवर्तन न किए जाएं तो शायद कहीं-कहीं कठिनाई पैदा हो सकती है।

मैंने अनेक बातों की चर्चा प्रस्तुत की है तथा उनके पीछे रहे दृष्टिकोण, सिद्धांत और प्रक्रिया—इन तीनों को समझाने का प्रयास किया है।

चावल पके हैं या नहीं, इसे देखने के लिए ऊपर से थोड़े चावल लेकर देख लिए जाते हैं। सारे बर्तन में हाथ नहीं डाला जाता। इससे हम समझ सकते हैं कि परंपरा के परिवर्तन के पीछे हमारा क्या दृष्टिकोण है? क्या प्रक्रिया है? मैं समझता हूं कि इसे समझने के बाद सैकड़ों उलझनें स्वतः समाप्त हो जाती हैं। ❖

तेरापंथ : पुरुषार्थ से प्राप्त सफलता

साध्वी विमलप्रज्ञा

सफलता का रहस्य पुरुषार्थ में छिपा है। पुरुषार्थ की कोख में ही महानता पलती है। बीज छोटा होता है, पर पृथ्वी के कठोर हृदय को चीर कर अंकुरित हो जाता है। अनेक झंझावातों को पार कर एक बड़े वृक्ष का आकार ले लेता है, इसलिए कि उसके भीतर प्रबल जीवनी शक्ति होती है। महापुरुषों की जीवन वीथी में भी हम इसी दर्शन को देख सकते हैं। अभावों, संघर्षों तथा जमीन के तल से उठा हुआ व्यक्ति जब शिखर को छूता है तो उसके पीछे छिपा होता है एक सत्य। इस सफलता के पीछे बोलती है व्यक्ति की श्रम-निष्ठा, संकल्प की दृढ़ता, लक्ष्य के प्रति समर्पण तथा स्वयं के प्रति आस्था। तेरापंथ के उद्भव की कहानी इसी सत्य की फलश्रुति है। तेरापंथ का उद्भव हुआ आचार्य भिक्षु के अंतस्तल की गहराई से। तेरापंथ का उद्भव हुआ आचार्य भिक्षु के श्रम की स्वेद-बूंदों से। तेरापंथ का उद्भव हुआ तप की जाज्वल्यमान् अग्नि से।

राम ने शबरी की कुटिया में प्रवेश करते ही पूछा कि इस जंगल में सारे फूल खिले हुए कैसे? उनमें एक भी कुम्हलाया हुआ नहीं है, प्रत्येक से मधुर भीनी-भीनी सुगंध निकल रही है—इसका क्या कारण है? शबरी ने कहा—'भगवन्! यहां मातंग ऋषि का आश्रम था। मातंग ऋषि अपने शिष्यों के साथ यहां रहते थे। एक बार चातुर्मास-काल में आश्रम में ईंधन समाप्त-प्राय था। वर्षा प्रारंभ होने के पूर्व ईंधन लाना जरूरी था। प्रमादवश शिष्य लकड़ी लेने नहीं जा रहे थे, तब स्वयं वृद्ध मातंग ऋषि अपने कंधे पर कुल्हाड़ी रखकर लकड़ियां काटने चले। गुरु को जाते देख शिष्य भी उनके पीछे चल पड़े। सूखी-सूखी लकड़ियां काटकर, उन्हें बांधकर वे लोग आश्रम की ओर लौटने लगे। वृद्ध आचार्य के शरीर से श्रम-बूंदें टपकने लगीं। शिष्य भी पसीने से भीग गए। मार्ग में जहां-जहां श्रम-बूंदें गिरीं, वहां-वहां सुंदर फूल खिल उठे। बढ़ते-बढ़ते आज सारे वन में फैल गए। उनके श्रम का ही प्रभाव है कि वे ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं।' श्रमजीवी के शरीर से निकलने वाली स्वेद-बूंदों से धरती भी मोती उगलने लगती है। तेरापंथ को भी आचार्य भिक्षु ने अपने श्रम की स्वेद-बूंदों से सींचा है, जिससे आज

> *"अनुकूल समय हर व्यक्ति को अपनी समीक्षा का, अपने अंतस् में झांकने का अवसर देता है कि प्रतिकूल परिस्थिति को झेलने की ताकत आज भी तुम्हारे भीतर है या चुक गई? प्रतिकूलताएं मनःस्थिति को संतुलित बनाए रखती हैं या हम अपनी दुर्बलताओं को अपने पर हावी होने देते हैं? यह समीक्षा आज भी तेरापंथ में होती है और पाते हैं कि हर परिस्थिति का सामना करने की तैयारी है।*

तेरापंथ स्थापना दिवस पर विशेष

वह पूर्ण रूप से पल्लवित-पुष्पित और प्राणवान-सा नजर आ रहा है।

तेरापंथ के विकास की यात्रा प्रारंभ हुई इति से। चिर-स्थाई विश्रामस्थली से आचार्य भिक्षु की अंतर्यात्रा प्रचंड सूर्य के तेज की भांति आतापित होकर चली। उनकी यात्रा का लक्ष्य अज्ञात को ज्ञात करना था। आत्मा को परमतत्त्व में विलीन करना तथा आकार को निराकार बनाना था। अज्ञात को ज्ञात करने में उनको अनेक परिस्थितियों से लोहा लेना पड़ा। अनंत की यात्रा में उन्हें मिला अभाव, आलोचना, गालियां और संघर्षों का सहयोग। न रहने के लिए मकान, न खाने के लिए पर्याप्त आहार और न पहनने के लिए कपड़ा। फिर भी सत्य की प्रतिष्ठा के लिए उनके चरण अविराम आगे बढ़ते चले। अभाव और भूचाल भी उनके सहगामी बन कर चले। हर कदम पर प्रतिकूलताओं ने उनका स्वागत किया। प्रतिकूलताओं के साथ की गई मैत्री ने उनको पीछे मुड़कर देखने का अवसर ही नहीं दिया। उन्होंने भूख और प्यास में अनगिनत रातें बिताई। स्थान की खोज में सुबह से शाम तक घूमे। साधु-साध्वियों को भिक्षा यह कहकर नहीं दी जाती थी कि ये भिक्षु के शिष्य हैं और उनको यदि कोई भिक्षा दे भी देता तो उसको 21 रुपये का जुर्माना भरना पड़ता। शरीर की अनिवार्य अपेक्षाएं तो केवल कल्पनाओं के झूले में झूल रही थीं, लेकिन दैहिक समस्याओं के सामने हार मान लेना उनकी भाग्य-रेखा में अंकित ही नहीं था। तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण स्वयं उनके ही जीवन के संघर्षभरे पृष्ठ से—

म्हे उणा ने छोड़या जद पांच वर्ष तांई तो पूरो आहार न मिल्यो...। आहार-पाणी जांच नै उजाड़ में सर्व साध परहा जावता। रूंखरां की छायां आहार-पाणी मेल नै आतापना लेता। आथणा रां पाछा गांव में आवता। इण रीते कष्ट भोगवता, कर्म काटता। म्हे या न जाणता म्हारो मार्ग जमसी, नै म्हां में यूं दीक्षा लेसी, नै यूं श्रावक-श्राविका हुसी। आत्मा रा कारज सारसां, मर पूरा देसां, इम जाण नै तपस्या करता।

इस प्रकार कष्टों को सहन करते और कर्म काटते, आचार्य भिक्षु ने 'करेंगे या मरेंगे' के सूत्र को आत्मसात कर लिया था। इसी कारण उनकी वाणी से आत्मोद्धार के वचन निकलते थे। संघर्षों के हवन-कुंड में अपनी आहुति देने के लिए हर पल उद्यत रहते थे। हर कष्ट को वे कर्मनाश का शास्त्र समझते थे। अपने साध्य के लिए प्रत्येक उत्ताल लहर से टकराने का साहस उनमें अनुपम था। आपदाओं और विपदाओं ने उनको महानता के शिखर तक पहुंचाने में पूर्ण रूप से सहयोग किया। महानता के साथ परीक्षाओं का होना अनिवार्यता-सी लगती है, फिर आचार्य भिक्षु उनसे अछूते कैसे रहते!

केवल जिनवाणी को केंद्रबिंदु मानकर भिक्षु के चरण आगे बढ़े। जैसे-जैसे चरण बढ़े, मार्ग ने स्वयं उनका अनुसरण किया। महापुरुष किसी के बनाए हुए पथ पर चलने की बजाय स्वयं अपने पथ का निर्माण करते हैं। आचार्य भिक्षु ने आत्ममेध यज्ञ में तपकर एक ऐसे पथ का निर्माण किया जो चट्टान की भांति अडिग रहा। इस यज्ञ में अनेक उपद्रवों का सामना सहजता से किया। एक क्षण के लिए भी उनका मनोबल प्रकंपित नहीं हुआ। सत्य और धैर्य उनके ब्रह्मास्त्र थे। उन्हीं की भांति उनके शिष्य भी उनके हर कार्य के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते थे। संघ के लिए उनके हर आदेश पर बलिदान को तैयार रहते थे। वे सत्य के लिए यज्ञ-कुंड में भस्मीभूत होने के लिए सदा तत्पर रहते थे। एक प्रसंग इसी सत्य को उजागर करता है।

मुनि फतेचंदजी के सैंतीस दिन की तपस्या का पारणा था। पारणे में पिता बाजरे की ठंडी घाट लेकर आए। पुत्र से कहा——बेटे, कुछ नहीं मिला। उन्होंने ठंडी घाट से पारणा कर लिया। कुछ ही समय बाद भयंकर व्याधि उठी। देखते-देखते वे साधना के मोर्चे पर शहीद हो गए। ऐसे अनेक-अनेक घटना-प्रसंगों से तेरापंथ का इतिहास भरा पड़ा है।

आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य तुलसी तक का शासनकाल संघर्षों की एक लंबी दास्तान है। आचार्य तुलसी की कीर्ति पताका जहां शिखर पर फहरा रही थी, वहां संघर्ष भी मंद गति से उनके पीछे-पीछे चल रहे थे।

आचार्य तुलसी के युग में होने वाली सौराष्ट्र, खानदेश, पंजाब आदि क्षेत्रों की यात्राएं संघर्षभरी यात्राएं थीं। उनके साधु-साध्वियां भी कष्टों की भट्टी में तपकर जैन शासन की प्रभावना में अहर्निश लगे रहे। हर विरोध को विनोद समझकर सामना करना उनका इष्ट मंत्र था। अत्यधिक कष्टों ने उनके मनोबल को प्रकंपित करने का प्रयत्न किया। पर, अंगद-पद की भांति अडिग रहे। निंदा, आलोचना तथा गालियों के उपहार को सहर्ष स्वीकार किया। यात्रा के हर अवरोध को प्रसन्नता से पार किया। विघ्न की पगडंडियों को पार कर राज-पथ का निर्माण किया।

आज हम तब से अब तक की समीक्षा करते हैं तो परिस्थितियों का बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है। इतिहास

के संघर्षभरे स्वर्णिम आलेख मस्तिष्क के हर कोने में आज भी अपनी उपस्थिति का एहसास करा रहे हैं। बलिदानी गाथाएं कंठों में मुखर हो जाती हैं।

एक वह समय था जब हमारे पूर्वज साधु-साध्वियों के चारों ओर प्रतिकूलताएं भ्रमण करती थी। आज वह समय है, जहां साधु-साध्वियों के चारों ओर अनुकूलताएं बांहें फैलाए खड़ी हैं।

एक वह समय था, जब साधु-साध्वियां स्थान के लिए सुबह से शाम तक गमन-योग करते थे, फिर भी अनुकूल स्थान उपलब्ध नहीं होता था। आज वह समय है कि लोग स्वयं प्रतिकूल स्थिति में रहकर साधु-साध्वियों को अनुकूल स्थान देने का प्रयत्न करते हैं। यह समय का परिवर्तन है या पूर्वजों की तपस्या का फल है—तेरापंथ के आचार्य जिस गांव, जिस नगर से गुजरते हैं—सरकारी, गैर-सरकारी स्कूलें, अन्य भवन या दूसरे निजी स्थान स्वतः उपलब्ध हो जाते हैं।

अनुकूल समय हर व्यक्ति को अपनी समीक्षा का, अपने अंतस् में झांकने का अवसर देता है कि प्रतिकूल परिस्थिति को झेलने की ताकत आज भी तुम्हारे भीतर है या चुक गई? प्रतिकूलताएं मनःस्थिति को संतुलित बनाए रखती हैं या हम अपनी दुर्बलताओं को अपने पर हावी होने देते हैं? यह समीक्षा आज भी तेरापंथ में होती है और पाते हैं कि हर परिस्थिति का सामना करने की तैयारी है।

आज हम अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित राज-पथ पर बढ़ते हुए, अपने भीतर में गौरव का अनुभव करते हैं। आनंद और प्रसन्नता में जीवन के अमूल्य क्षणों को व्यतीत करते हैं। ये क्षण हमारे सामने एक प्रश्न प्रस्तुत करते हैं कि इन क्षणों के निर्माण में हमारा क्या योगदान है? हमारे भीतर भी क्या ऐसा संकल्प उठता है कि हम भी अपने श्रम से ऐसा आदर्श प्रस्तुत करें जो भावी पीढ़ी के लिए बोध-पाठ बन सके, इतिहास के साथ कुछ उजले पृष्ठ जुड़ सकें? इस अनुकूलता में हमारे श्रम का दीप जल रहा है या बुझ गया है? हमारे पूर्वजों ने संघ की नींव को मजबूत बनाने के लिए जीवन के हर क्षण का सार निचोड़ने का प्रयत्न किया था। संघ-विकास के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था, आज हम उसकी आभा को चमकाने के लिए कितना प्रयत्न कर रहे हैं?

दूसरों के द्वारा निर्मित लकीरों पर चलने में वह आनंद नहीं मिलता जो अपने पुरुषार्थ से प्राप्त सफलता से मिलता है। संघर्षों के द्वारा जो विजय हासिल होती है, उसका महत्त्व अलग ही होता है।

एक समय था, जब लोग तेरापंथ का विरोध करने में अग्रणी रहते थे। आज वह समय है कि विरोध करने वाले स्वयं तेरापंथ के मिशन के साथ जुड़कर गौरव का अनुभव करते हैं। आज तेरापंथ की श्वेत-धवल वाहिनी जहां से गुजरती है, वहां एकता, प्रेम, सौहार्द और भाईचारे का माहौल मूर्तिमान बनकर सामने आ जाता है। सचमुच, लगता है कि तेरापंथ प्रभु का पथ है, सबका पथ है। हर कौम तेरापंथ को 'मेरा पंथ' समझने लगी है।

एक वह समय था जब तेरापंथ का नाम सबसे नीचे की पंक्ति में था और आज वह अपने-आप को प्रथम पंक्ति में स्थापित कर चुका है। इस प्रतिष्ठा तक पहुंचने का राज है—तेरापंथ के आचार्यों की श्रमशीलता, उदार चिंतन, युग के साथ चलने की क्षमता तथा बलिदानी साधु-साध्वियों का श्रम, निष्ठा, समर्पण और सहिष्णुता।

सत्य, न्याय, प्रेम और अहिंसा की धरती पर टिके हैं तेरापंथ के पांव। इसीलिए तेरापंथ आज भी अपनी तीखी आलोचनाओं का उत्तर देने में शक्ति का अपव्यय नहीं कर, विकास की दिशा में अपनी सारी शक्ति को नियोजित करता है। उसकी निष्पत्ति को आज केवल तेरापंथ और जैन समाज ही नहीं, बल्कि पूरा राष्ट्र आशाभरी नजरों से देख रहा है। तेरापंथ का इतिहास जितना लिखें उतना कम है। एक पंक्ति में—

सागर में पाणी घणो, सो गागर नाहिं समाय। ❖

अतीत के विषय में सर्वास्तिवादी दृष्टि—यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्—जितना हानिकारक है, उससे कम हानिकारक सर्वनिषेधवादी दृष्टि नहीं है। जैसे सांप्रदायिक तनावों के मामले में होता है कि एक धर्म से जुड़े लोगों की कट्टरता उसके विरोधी की शक्ति बनती और उसके कट्टरतावादी होने के लिए औचित्य तैयार करती है, उसी तरह सर्वास्तिवादी और सर्वनिषेधवादी दृष्टियां भी एक-दूसरे को शक्ति प्रदान करती और औचित्य तैयार करती हैं। ये दोनों अपनी प्रकृति में पौराणिक हैं।

—भगवानसिंह

तेरापंथ : विसर्जन अहंकार-ममकार का

साध्वी नगीना

इंग्लैंड की महारानी से पोप ने पूछा—आपका राज्य कब तक चलेगा? प्रश्न महत्त्वपूर्ण था। महारानी ने—'अभी उत्तर नहीं दूंगी'—कहकर प्रसंग पर विराम-चिह्न लगा दिया। समय का प्रवाह आगे बढ़ा। महारानी ने बैंक से दस हजार पौंड मंगवाए। वहां के कानून से चौबीस घंटों में रकम वापस लौटानी होती है। कानून का अतिक्रमण किया। लौटाई नहीं। कानून, कानून है। न्याय की तुला पर छोटे-बड़े की भेद-रेखा नहीं होती। मैनेजर ने 'केस' कर दिया। महारानी को कोर्ट में उपस्थित होने का आदेश मिला।

उसका भी अतिक्रमण किया। पोप के पास शिकायत पहुंची। महारानी से मिलकर पोप बोला—साहिबा! कानून की भाषा आप जानती हैं? महारानी ने अविलंब रकम पोप के सामने रख दी। पोप आश्चर्यभरी नजरों से देखने लगा। समझ नहीं पाया, इसका राज क्या है? महारानी ने समाहित करते हुए कहा—यही आपके प्रश्न का उत्तर है। जब तक मेरे देश के लोग जाग्रत हैं, विधि-विधानों का अतिक्रमण नहीं करते, कर्तव्यनिष्ठ हैं—तब तक मेरा राज्य चलेगा।

> "
>
> *आचार्य भिक्षु ने कहा—गलती करने वाले को शिष्टता के साथ कहो, अथवा गुरु के पास प्रस्तुत करो, प्रचार करना उचित नहीं। सुधारने का दृष्टिकोण हो, किसी को अपमानित करने का नहीं। किसी को अपमानित कर स्वयं का उत्कर्ष चाहना स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। किसी भी परिवार, समाज या संस्था के सदस्यों में एक-दूसरे को अपमानित करने की वृत्ति स्वयं के पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है। संगठन को दृढ़मूल बनाने की पहली शर्त है—दोषारोपण की वृत्ति का उन्मूलन।*

247वां स्थापना दिवस
11 जुलाई
हर्ष! हर्ष!!

आचार्य भिक्षु के सामने भी यही प्रश्न आया था। आपका शासन कब तक चलेगा? आचार्य भिक्षु ने उत्तर में कहा—जब तक साधु-साध्वियां श्रद्धा और आचार में सुदृढ़ रहेंगे, वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेंगे और मकान बनाकर नहीं बैठेंगे, मर्यादा-अनुशासन में सजग रहेंगे—तब तक यह मार्ग चलेगा।

आचार्य भिक्षु की जीवंत कल्पनाओं का सच है—तेरापंथ। मर्यादा-अनुशासन का उसमें नाभिकीय स्थान है। विनय-नम्रता उसका सौंदर्य है। आचार-विचार सुषमा है। सेवा-समर्पण की संस्कृति है। अनुभूत सत्य की स्वस्थ प्रस्तुति है। किसी भी संगठन का रथ इन्हीं तत्त्वों के आधार पर गतिमान होता है। संगठन को खोखला बनाने वाले तत्त्वों का आचार्य भिक्षु ने प्रारंभ से ही निरसन कर दिया।

वे एक अलौकिक पुरुष थे। जैन शासन की चालू परंपरा को मोड़ देने में भगीरथी प्रयत्न किया। लोक-धारणा के साथ सामंजस्य नहीं बैठा।

क्रांति का बीज अंकुरित होने से पूर्व ही कुचलने का प्रयास किया गया। उनकी क्रांति का सफर जिधर से गुजरता, विरोधों का सैलाब उमड़ पड़ता, किंतु आचार्य भिक्षु के चिंतन की ऊंचाई और ज्ञान की गहराई के सामने प्रतिपक्षी लोगों के मनसूबे कच्ची दीवार की तरह ढह पड़ते।

अकडं करिस्यामि--का फौलादी संकल्प और पुरुषार्थ की लौ थामे कदम बढ़ते गए, कहीं रुके नहीं, चलते चले। संघर्षों के तूफान में भी अपनी साधना की किश्ती को निर्भीक खेते रहे। रास्ते बनते नहीं, बनाए जाते हैं। तभी तो अनेक अंधकारपूर्ण गलियारों से गुजर कर भी पूर्ण तेजस्विता के साथ चमकते रहे। निर्माण की बुनियाद भाग्य-भरोसे नहीं—आत्मविश्वास, दृढ़ संकल्प और पुरुषार्थी प्रयत्नों से रखी जाती है।

उनका निर्णय अनुभव की कसौटी पर खरा उतर कर होता था। दूरदर्शिता ने उन सभी द्वारों को बंद कर दिया जो संगठन के विघातक थे। आज संगठन क्यों टूट रहे हैं? कारणों को जानना अपेक्षित है। आग्रह, महत्त्वाकांक्षा, दलबंदी, दोषारोपण और ममकार—ये ही कारण हैं टूटन के, टकराव के।

आग्रह

आचार्य भिक्षु का चिंतन अनाग्रही था। न विचारों का आग्रह, न परंपरा का व्यामोह। सत्य का शोधक सदा विनम्र रहता है। उसमें अज्ञात या अनुभूत के प्रति अभिनिवेश नहीं होता। सत्य की खिड़की को वह सदा खुला रखता है। अध्यात्म के क्षेत्र में यह अहिंसा के प्रयोग की कहानी है।

आग्रह सत्य के द्वार को सील देता है। उस पार क्या है, झांकने का अवकाश नहीं रहता। आचार्य भिक्षु ने कहीं भी आग्रह की मोहर (छाप) नहीं लगाई। उन्होंने कहा—खींचा-तानी मत करो। कोई तत्त्व समझ में न आए तो ज्ञानीगम्य करके छोड़ दो। चिंतन भले करो, आग्रह न हो। सत्य हमारी बुद्धि के घेरे में समाए, इतना ही नहीं होता, वह आकाश की तरह विशाल है। बुद्धि की सीमा है।

उन्होंने हर नई व्याख्या के साथ यह लिखा कि मुझे सही लगता है, इसलिए लिख रहा हूं। आने वाले आचार्यों को सही न लगे तो परिवर्तन कर सकते हैं। कितना निश्छल था उनका चिंतन। वे सत्य को रूढ़ बनाना नहीं चाहते थे।

महत्त्वाकांक्षा

मानव की मनोवृत्ति दुर्बल है। हर क्षेत्र में अपने-आप को अतिरिक्त दिखाने की भावना महत्त्वाकांक्षा है। पद और प्रतिष्ठा का नशा शराब के नशे से भी भयंकर है। उसकी मादकता जगविख्यात है। अपना पैमाना कितना है, देखा नहीं जाता। केवल पद चाहिए। पद की अयोग्यता से सहयोगी हाथ पीछे लौट जाते हैं। फिर अपनी पराजय का एहसास होता है। परिताप की ज्वाला भीतर ही भीतर कचोटती रहती है।

गुटबंदी

अधिकार की प्रबल भावना से गुटबंदी का जन्म होता है। यह राजनीति का अस्त्र है। साधना के साथ गुटबंदी का संबंध नहीं। क्योंकि वहां अधिकार और सत्ता का प्रश्न नहीं होता। गुटबंदी का कारण है विचार के साथ स्वार्थ का संयोग।

किसी को विहार का क्षेत्र साधारण दिया, किसी को कपड़ा साधारण मिला। ऐसे छोटे-छोटे कारणों से परस्पर मिलकर दलबंदी कर लेते हैं। आचार्य के खिलाफ व्यूह-रचना खड़ी करते हैं। परमार्थ गौण हो जाता है। आचार्य भिक्षु ने कहा—संघ में रहते हुए गुटबंदी करने वाला विश्वासघाती है। अनंत संसारी बन जाता है।

दोषारोपण की वृत्ति

जीवन है वहां भूलें अस्वाभाविक नहीं हैं। साधक सिद्धावस्था की कोटि में नहीं पहुंचा है। उसके सामने अनेक फिसलनभरे रास्ते हैं। संघ में कोई भी गलती करता है। दूसरा देखता है। न कहें, तो दोष को प्रश्रय देना है। उसका सुधार कैसे हो, यह उदात्त चिंतन है।

आचार्य भिक्षु ने कहा—गलती करने वाले को शिष्टता के साथ कहो, अथवा गुरु के पास प्रस्तुत करो, प्रचार करना उचित नहीं। सुधारने का दृष्टिकोण हो, किसी को अपमानित करने का नहीं। किसी को अपमानित कर स्वयं का उत्कर्ष चाहना स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है। किसी भी परिवार, समाज या संस्था के सदस्यों में एक-दूसरे को अपमानित करने की वृत्ति स्वयं के पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है। संगठन को दृढ़मूल बनाने की पहली शर्त है—दोषारोपण की वृत्ति का उन्मूलन।

दोष थोपना, प्रचार करना और उपेक्षा करना—तीनों ही उचित नहीं। आचार्य भिक्षु के शब्दों में—दोषों को इकट्ठा करना, लंबे समय तक छिपाए रखना, बहुत दिनों के बाद बतलाना—वह स्वयं अविश्वास का पात्र बन जाता है।

व्यवहार संबंधों से बना अनेक घुमावों वाला पथ है जो घूमकर वापस वहीं आता है। साधना का सीधा-सपाट राजपथ है। वहां अहं-विसर्जन, ऋजुता का दर्शन आवश्यक है। ऋजुता में दोषारोपण की वृत्ति नहीं पनपती।

ममकार

ममत्वभाव साधना का पलिमंथु है। जहां ममता है वहां समर्पण नहीं रहता। समर्पण तेरापंथ की मौलिक विशेषता है। समर्पण का अर्थ—अपने भाग्य को गुरु के हाथों में थमा देना। अपने अस्तित्व को विलीन कर गुरु से अद्वैत की अनुभूति करना। समर्पण में अपना कुछ रहता ही नहीं, ममत्व निरस्तित्व बन जाता है।

साधु-साध्वियों के 'ग्रुप' का मुखिया गुरु-दर्शन करने पर कहता है—मैं हाजिर हूं, ये साधु या साध्वियां, पुस्तक-पन्ने सब चरणों में हाजिर हैं। आप जैसे, जहां रखाना चाहें, रहने का भाव है।

इस प्रकार समर्पण किए बिना पानी भी नहीं पी सकते। यह हृदय की भाषा है। तेरापंथ का समर्पण और ममत्व-विसर्जन की पद्धति दुनिया की दुर्लभ घटना है।

संगठन की बाधक उपरोक्त पांचों बातों को आचार्य भिक्षु ने निर्मूल कर दिया। इसीलिए संगठन स्वस्थ है। संघ की डोर कुशल हाथों में होती है, तब कोई समस्या नहीं आती।

तेरापंथ एक आचार्य केंद्रित संघ है। आचार्य पर संयम का अनुशासन है। शिष्यों पर संयम के साथ आचार्य का अनुशासन भी होता है। अनुशासन की पृष्ठभूमि में सत्ता की भाषा नहीं, विनय और वात्सल्य की मधुरिमा है।

शिष्यों का विनय, आचार्य का वात्सल्य—दोनों की संयुति अनुशासन का सुरक्षा कवच है। मर्यादा की वेदी पर समर्पण की आहुति से भाल पर तिलक लगाने वाला संघ का अलंकार, दुनिया का आधार बन जाता है। ❖

जैसे—प्रकाश का अभाव अंधकार है, वैसे ही ज्ञान का अभाव अज्ञान है। इसलिए ज्ञान और अज्ञान का भेद प्रकाश और अंधकार का भेद है। समस्त मानवीय दुख क्षुद्र ज्ञान से पैदा होते हैं। क्षुद्र और महान सत्य में भेद आवश्यक है। व्यक्तियों को क्षुद्र सत्य की तरह मार्ग से कोई और वस्तु विचलित नहीं करती। वे आगे और पीछे की सोचे बिना छोटे-छोटे टुकड़े बटोरते चलते हैं। ऐसे टुकड़े किसी नमक के ढेले से बेहतर नहीं होते, पर समस्त सृष्टि का बोध सत्य की महानता में निहित है। उसके लिए हर प्रकार से तैयार होना आवश्यक है। इस भरोसे मत रहें कि सत्य की महानता अपने-आप प्राप्त हो जाएगी।

पूर्वाग्रहरहित सच्चा ज्ञान ही भविष्य का सच्चा मार्गदर्शक होगा। ज्ञान की पुष्टि मात्र ही अंतर्विरोधों को समाप्त करेगी। केवल ज्ञान ही गोचर-अंतर्विरोधों के समूह को नियंत्रित कर सकेगा। हम ज्ञान को चेतना की पुष्टि का आधार बनाना चाहते हैं। ज्ञान एक शिक्षा का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। वास्तव में ज्ञान तो एक ही स्रोत से प्राप्त होता है। जहां ज्ञान की अग्नि जलती है, प्रकाशमय भविष्य वहीं होगा। ज्ञान का व्यापक प्रसार विश्व को नया जन्म दे सकता है।

वह ज्ञान और विज्ञान में अंतर करते हैं, क्योंकि ज्ञान कला है और विज्ञान एक पद्धति है।

—एस.वी. स्तुलगिंस्की

त्यांरी लागी मुक्ति सूं ताली

श्रीचंद रामपुरिया

मिथिला के अधिपति नमि राजर्षि ने पुत्र को राज्य सौंप दीक्षा ली। उस समय इंद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर नमि राजर्षि के पास आ बोलने लगा— 'हे भगवन्! अग्नि और वायु के द्वारा ये मंदिर और आप का अंतःपुर दग्ध हो रहे हैं। जरा उनकी ओर दृष्टि क्यों नहीं डालते?' नमि राजर्षि ने जवाब दिया : 'मिथिला नगरी में हमारा कुछ नहीं। मिथिला के जलने से हमारा कुछ नहीं जलता। मैं तो सुखपूर्वक जीता और बसता हूं। जिस भिक्षु ने पुत्र-कलात्रादि का त्याग कर दिया और जो सर्वव्यापार से रहित है, उसके लिए प्रिय-अप्रिय कुछ भी नहीं। **सर्वतः विमुक्त एकांतानुपश्यी**—आत्मलक्षी मुनि, अनगार, भिक्षु तो हमेशा क्षेम-कुशल है।' नमि राजर्षि के इस उत्तर से उनकी आत्म-दशा का पूरा-पूरा पता चलता है। यह एक आत्मज्ञानी की अनूठी आत्मदशा थी, जिसे त्यागी-वैरागी ही समझ सकते हैं।

आचार्य भिक्षु की आत्मदशा भी ऐसी ही निर्विकार थी। वे एक अनूठे आत्मज्ञानी थे। शुद्ध आत्मदशा को प्राप्त करना—यही स्वामीजी के जीवन की साध थी और इसी कारण से उनकी चित्तवृत्ति सब विकल्पों से परे रह कर उसकी साधना में एकांत निमग्न थी। जब हम स्वामीजी को इसी तरह के एकांत-अनुपश्यी—आत्मलक्षी के रूप में देखने की चेष्टा करते हैं, तभी हमें उनकी सची तह लग पाती है। स्वामीजी अपनी आत्मा में ही बसते और जीते थे। आत्म-वास ही उनके लिए सब से बड़ा कुशल और क्षेम था। बाह्य सांसारिक विकल्पों में वे मुरझाते नहीं थे। स्वामीजी कहा करते : **समभाव राखै ते सुज्ञानी**—जो आत्मा को तौल कर रखता है, राग-द्वेष के वश समभाव को—चित्त-समाधि को नहीं खोता— वही सच्चा ज्ञानी है। जीवन में प्रतिपल स्वामीजी इस समभाव की रक्षा करते थे। उनकी अंतर-भावना धर्म-ध्यान से ओत-प्रोत रहती और हर समय वे आत्मा के एकांत-हित की बात को सामने रख कर ही कदम उठाते। वे एक आध्यात्मिक योगी थे। आत्म-साधना उनके जीवन का महायोग था। उनके विचारों और दृष्टांतों में आध्यात्मिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। उनके कुछ विचार यहां प्रस्तुत हैं जो उनके जीवन की इस विशेषता को प्रतिपादित करते हैं—

> “
>
> *स्वामीजी कहा करते : 'समभाव राखै ते सुज्ञानी'—जो आत्मा को तौल कर रखता है, राग-द्वेष के वश समभाव को—चित्त-समाधि को नहीं खोता—वही सच्चा ज्ञानी है। जीवन में प्रतिपल स्वामीजी इस समभाव की रक्षा करते थे। उनकी अंतर-भावना धर्म-ध्यान से ओत-प्रोत रहती और हर समय वे आत्मा के एकांत-हित की बात को सामने रख कर ही कदम उठाते। वे एक आध्यात्मिक योगी थे। आत्म-साधना उनके जीवन का महायोग था।*

आचार्य भिक्षु जन्मोत्सव 9 जुलाई —अभिवंदना—

मृत्यु और मोह

रोग, वियोग, मृत्यु आदि कष्ट पड़ने पर संसारी लोग रोना-पीटना करने लगते हैं। स्वामीजी ने एक बार कहा था—'ऐसे अवसरों पर रोना-पीटना नहीं चाहिए। अपनी आत्मा को मजबूत बना लेना चाहिए। धैर्य और समभाव से सहन करना चाहिए। सिर पर कर्ज होने से उतारने की इच्छा व समर्थ न होने पर भी जैसे पाने वाला जबरदस्ती अपने रुपये अदा कर लेता है, उसी तरह संचित कर्म उदय में आकर फल दिए बिना नहीं रह सकते। जब महाजन कर्ज अदा करता है तो मूर्ख रोने लगता है, पर चतुर विचार करता है—'लो, चलो अच्छा ही हुआ। कुछ बोझा तो हलका हुआ। रुपये तो अंत-पंत देने ही पड़ते। आज ही चुक गए तो टंटा नहीं रहा'। इसी तरह से कष्ट के समय सोचना चाहिए—'यह कर्म-कर्ज चुक रहा है। आज नहीं तो कल, संचित कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता। अच्छा हुआ जो आज ही उदय में आ गए। कुछ तो आत्मा हलकी हुई।'

स्वामीजी के उपरोक्त उपदेश में उनकी आध्यात्मिकता फूट पड़ती है। शोक-विह्वल मनुष्य के लिए कितना सुंदर उपदेश उपरोक्त अवतरण में है।

पांच महाव्रत और उनकी संगति

स्वामीजी कहा करते थे कि हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह, इन पांचों पापों के युगपत् त्याग से ही कोई जैन साधु बन सकता है। ऐसा त्याग भी सर्वथा और यावज्जीवन होना चाहिए। जो एक या अधिक पापों का त्याग करता है, परंतु सब का एक साथ नहीं, अथवा त्याग तो सब का करता है, परंतु संपूर्ण रूप से—तीन करण तीन योग से नहीं—वह गृहाचारी है—साधु नहीं। सर्व-पापों से एक साथ संपूर्ण विरति को ही महाव्रत कहते हैं।

स्वामीजी ने अपने इस सिद्धांत को गुरु-शिष्य के संवाद रूप में बहुत सुंदर ढंग से समझाया है :

गुरु—'हिंसा, चोरी, झूठ, अब्रह्मचर्य और परिग्रह—इन दुष्कर्मों के आचरण से जीव कर्मों का उपार्जन कर चार गति रूप संसार में भ्रमण करता है।

'अहिंसा, अमिथ्या, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांचों महाव्रतों का निरतिचार पालन करने वाला अणगार नए कर्मों का उपार्जन न करता हुआ पुराने कर्मों का क्षय करता है और इस प्रकार अपनी आत्मा को निर्मल कर मोक्ष प्राप्त करता है।'

शिष्य—'मैं पहला महाव्रत ग्रहण करता हूं—मैं छः प्रकार के जीवों की हिंसा नहीं करूंगा, परंतु मेरी जबान इतनी वश में नहीं कि मैं झूठ छोड़ सकूं। अतः स्वामीजी! झूठ बोलने की मुझे छूट है।'

गुरु—'भगवान के बताए हुए पांच महाव्रत इस तरह ग्रहण नहीं किए जाते। जब तुम झूठ बोलने का त्याग नहीं करते, तब यह विश्वास कैसे हो कि तुम हिंसा में धर्म नहीं ठहराओगे? झूठ बोलने वाला यह कहते संकोच कैसे करेगा कि देव, गुरु और धर्म के लिए प्राणियों की हिंसा करने में बुराई नहीं और आरंभादि कर देवलादि बनाने से जीव भली गति को प्राप्त करता है? मिथ्या भाषण द्वारा कोई इस सिद्धांत का प्रचार करने लग जाय कि हिंसा में भी धर्म है तो महाव्रत की तो बात दूर रही, समकित और चली जाय।'

शिष्य—'स्वामिन्! मैं हिंसा और झूठ—दोनों का त्याग करूंगा, परंतु चोरी नहीं छोड़ सकता। धन से मुझे अत्यंत मोह है।'

गुरु—'यदि तू जीव-हिंसा नहीं करेगा और झूठ नहीं बोलेगा तो तेरी चोरी कैसे निभेगी? यदि तू चोरी कर सत्य बोलेगा तो लोग तुझे चोरी कब करने देंगे? वे तो तुझे मुंह पर ही फ़टकार बताएंगे। परधन की चोरी करने से मालिक दुख पाता है। किसी को दुख देना हिंसा है। यदि तू कहेगा कि इसमें हिंसा नहीं, तो पहले दोनों ही महाव्रत चकनाचूर हो जाएंगे।'

शिष्य—'मैं तीनों महाव्रतों को अच्छी तरह ग्रहण करता हूं। परंतु चौथा महाव्रत स्वीकार करना—मुझ से नहीं बनता। मोह उदय से मेरी आत्मा वश में नहीं। मैं ब्रह्मचर्य-पूर्वक कैसे रह सकता हूं?'

गुरु—'चौथे आश्रव—अब्रह्मचर्य के सेवन से पहले तीनों महाव्रत भंग हो जाते हैं। अब्रह्मचर्य सब गुणों को एक पलक मात्र में ही उस तरह छार कर देता है जिस तरह पीनी हुई रुई को आग। मैथुन से पंचेंद्रिय जीवों की हिंसा होती है। हिंसा नहीं होती—ऐसा कहने से झूठ का दोष लगता है। अब्रह्मचर्य सेवन में जिनेंद्र भगवान की आज्ञा नहीं। मैथुन सेवन से भगवान की आज्ञा का भंग होता है, उसकी चोरी लगती है। इस तरह तीनों ही महाव्रत खंडित हो जाते हैं।'

शिष्य—'मैं चारों ही महाव्रतों को ग्रहण करता हूं, परंतु पांचवां महाव्रत कैसे ग्रहण करूं? ममता छोड़ना मेरे लिए कठिन है। मैं नौ ही प्रकार का परिग्रह रखूंगा।'

गुरु—'क्षेत्र-वास्तु, धन-धान्य, द्विपद-चौपद, हिरण्य-सुवर्ण और कुंभी धातु—ये परिग्रह—हिंसा, झूठ,

चोरी और अब्रह्मचर्य—इन चारों आश्रवों के मूल आधार हैं। तू परिग्रह की छूट रख कर अन्य व्रतों का किस तरह पालन करेगा? ऐसा कहना तो तुम्हारी निरी भूल है।'

शिष्य—'खैर, मैं पांचों ही आश्रवों का त्याग करूंगा, परंतु केवल एक करण, तीन योग से। मेरे स्नेही-संगी बहुत हैं, अतः मैं कराने और अनुमोदन करने की छूट रखता हूं।'

गुरु—'जब घर में थे तब तो तुम्हारी कोई गिनती ही नहीं करता था और खाने के लिए तुम्हें अनाज तक नहीं मिलता था और अब भगवान के साधुओं का वेष ग्रहण करने की इच्छा कर राज्य करने चले हो! तूने त्याग कर केवल अपना घर त्यागा है—उसमें होकर कितना धन-धान्य होगा? अब तो तू लोक में हुक्म चलाने की मंशा करता है—इस हिसाब से तू एक महाराजा से कम कहां है?'

शिष्य—'मैं पांचों ही आश्रवों का 2 करण, 3 योग से त्याग करता हूं। अब केवल अनुमोदन की छूट बाकी रहती है। अब मेरे वैराग्य में कोई कमी नहीं।'

गुरु—'अनुमोदन की छूट रख लेने से तू अशुद्ध आहार बहरेगा—गृहस्थ के साथ तुम्हारा संभोग बना रहेगा—और इससे तुम्हारे पांचों ही महाव्रतों में बिगाड़ हो जाएगा। पांचों ही आश्रवों में हर्ष-भाव रहने से उनके प्रति तुम्हारा आदरभाव नहीं छूटेगा। इस तरह मन, वचन, काया—इन तीनों ही योग के विषयों में तुम्हारा आर्त-रौद्र ध्यान रहेगा। पांचों ही आश्रवों का तीन करण, तीन योग से परिहार किए बिना कोई अणगार नहीं बन सकता। धर्म और शुक्ल ध्यान के ध्यान से ही अणगार होता है।'

यह सुन कर शिष्य ने पांचों महाव्रतों को युगपत् रूप से और तीन करण, तीन योग से यावज्जीवन के लिए ग्रहण कर आत्म-कल्याण किया।

गीता में कहा है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जाग्रति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।

इसका अर्थ है—जो संपूर्ण प्राणियों के लिए रात्रि है, उस नित्यशुद्ध बोधस्वरूप परमानंद में संयमी पुरुष जागता है और जिस नाशशील क्षणभंगुर सांसारिक सुख में समस्त भूतप्राणी जागते हैं, वह तत्ववेत्ता मुनि के लिए रात्रि है।

गीता का यह श्लोक आचार्य भिक्षु की चित्तवृत्ति पर संपूर्ण रूप से लागू पड़ता है। दुनिया जन्म-मृत्यु में हर्ष-शोक मनाती है। स्वामीजी आत्मा को अमर समझ मग्न रहने का उपदेश करते हैं। **त्यांरी लागी मुक्ति सूं ताली**—वे कहते हैं ज्ञानी की धुन मोक्ष में लगी होती है।

रह्या धर्म शुक्ल ध्यान ध्याई—वे धर्म शुक्ल-ध्यान में रत रहते हैं। दुनिया हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह बिना अपना गुजर नहीं देखती। स्वामीजी ने इनके सर्वथा और युगपत् त्याग की आवश्यकता बतलाई है। आंतरिक मुमुक्षुभाव और आध्यात्मिकता बिना यह सत्य दृष्टि संभव नहीं। ❖

घर-परिवार और मित्र-परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर 'जैन भारती' उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक-नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म-दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, 'जैन भारती' अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए
जैन भारती पढ़ें—सबको पढ़ाएं।

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन, महावीर चौक
गंगाशहर, बीकानेर 334401

इन्सानी नस्ल

नासिरा शर्मा

खिड़की से घुसती गर्म हवा अपने साथ पत्तियां-तिनके और हर सूखी बेकार की चीजें उड़ा कर ला रही थी। ट्रेन लू के थपेड़ों को चीरती आगे बढ़ रही थी। गर्मी इस गजब की थी कि खिड़की बंद करना मुश्किल था। प्यास से गला और होंठ खुश्क हो रहे थे। गर्म पानी का घूंट भर नवाब ने अपना गला तर किया और रूमाल से अपने चेहरे पर जमी धूल की परत को पोंछा। उसका जहन भटक रहा था। मां की बीमारी का तार उसे कल मिला था, तब से अब तक उसके गले से खाने का एक कौर भी नीचे नहीं उतरा था।

'भूख तो मुझे भी नहीं है मगर सोचती हूं, जबरदस्ती ही सही, हमें कुछ खा लेना चाहिए वरना खुद की तबीयत खराब हो गई तो मां की सेवा भी भली प्रकार नहीं कर पाऊंगी', सविता ने मुंह पोंछ, माथे की बिंदिया ठीक करते हुए कहा।

'मुझे कुछ नहीं होगा....तुम जरूर कुछ खा लो', कह कर नवाब ने टिफिन की बास्केट उठाई और पत्नी की तरफ देखा।

'आपके बिना मैंने कभी कुछ खाया है?' सविता हंस पड़ी।

उसके इस भोलेपन पर नवाब हमेशा हथियार डाल देता, सो इस समय भी वही हुआ। वह मुस्करा कर हाथ धोने लगा और सविता ने चारखाने की नैपकिन पर खाना लगा दिया। कुछ देर के लिए दोनों एक-दूसरे में गुम हो गए। हंसी, विनोद और खाने के स्वाद ने मां की बीमारी की चिंता भुला दी।

जैनब को बुखार में तपते हुए आज पंद्रहवां दिन था। छोटी बहू के आसरे एक कोने में पड़ी जरा-जरा-सी बात को तरसती थीं। वह कोई मजबूर औरत नहीं थीं, मगर इस बीमारी ने उन्हें तोड़ कर रख दिया था। वरना वह तो सुबह होते ही पूरे महल्ले में टहलती, सब की खैर-खबर लेती रहती थीं। उनके इसी दोस्ताना बर्ताव के कारण उनकी दवा, फल और जरूरत की चीजें उन तक पहुंच जाती थीं, मगर हर समय तो कोई खड़ा नहीं रह सकता था। सब के घर-द्वार थे, फिर घर में बहू और बेटे के रहते हुए सब को इस बात का गुमान भी न होता कि जैनब का दवा का टाइम गुजर जाता है और वह पानी मांगती पड़ी रहती हैं। बहू

"

दो हफ्ते पलक-झपकते गुजर गए। जैनब भी सही इलाज पाते ही पनप गई और उनका चलना-फिरना पहले की तरह होने लगा। सविता को अपना ससुराल और मिश्रा ताया का घर बड़ा भाया। हर बात में अपनापन था। किसी भी तरह का तनाव न था। ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी जो हल न हो पाती। ऐसी कोई उलझन न थी जो सुलझ न पाती।

कहानी

नसरीन अपने कमरे में या फिर बच्चों में बुरी तरह उलझी होती। वह कभी शिकायत न करतीं। घर की बातें लोगों के मुंह पर चढ़े, यह उन्हें पसंद न था।

दरवाजे की घंटी बजी। एक बार, दो बार, मगर दरवाजा नहीं खुला। नसरीन बच्चों और मियां को भेज अभी-अभी नहाने गई थी। जैनब कराहती हुई उठीं और दरवाजे तक पहुंच बेदम हो उठीं। बिना पूछे उन्होंने दरवाजा खोल दिया। दोनों हक्का-बक्का रह गए। मां बेटे-बहू को देख और नवाब, सविता मां को सामने खड़ा देख। नवाब ने आगे बढ़ कर मां को सहारा दिया और सविता ने उनके पैर छू, सामान अंदर ला, दरवाजा बंद किया। मां बदहवास-सी बिस्तर पर लेट गई। नवाब ने पानी दिया। सविता पलंग के पायताने आकर बैठ गई। उसके चेहरे पर भय की हलकी परत थी। नवाब के चेहरे पर परेशानी की कई लकीरें, मगर दोनों ही चुप रहे। मां की आंखों में सवाल-सा झांकता देख नवाब ने धीरे-से कहा, 'पन्ना चाचा का तार मिला था।'

सुन कर मां ने आंखें बंद कर लीं। सविता ने बढ़ते भय के बावजूद धीरे-धीरे सास का पैर दबाना शुरू कर दिया। तभी नसरीन भीगे बाल झटकती आंगन में निकली, कमरे में किसी को बैठा देख वह चौंकी। दिमाग में शक उभरा कि दरवाजा किसने खोला? कहीं मैं ही दरवाजा बंद करना भूल गई थी क्या? आगे बढ़ कर बोली, 'कौन'?

'मैं हूं....नवाब।'

'भाई साहब! आदाब, कब आए?'

'बस, अभी पहुंचा हूं', नवाब ने धीरे-से कहा।

नसरीन ने सविता को देखा और हलके-से मुस्कराई जिस से सविता को हौसला मिला, वह भी मुस्कराती हुई बावर्चीखाने में नसरीन के पीछे-पीछे गई। सामान बिखरा पड़ा था। सविता का मन चाहा कि बिखरी रसोई समेट दे, मगर अंदर की झिझक तोड़ नहीं पाई। नसरीन ने चाय बना कर बिस्कुट की प्लेट रखी और उसी तरह मुस्कराती सविता को देखती बाहर निकली। सविता फिर उसके पीछे चल पड़ी।

'बुखार कब से आ रहा है अम्मा?'

'हो गए होंगे कोई आठ-दस दिन....'

'डॉक्टर ने क्या बताया?'

'यहां का डॉक्टर मुआ क्या बताता है—बस, दवा थमा देता है। मैं तो हकीम की दवा से हमेशा ठीक हुई हूं, मगर नसरीन और जावेद की जिद थी कि डाक्टर अच्छा है....'

'मिश्राजी के बेटे की शादी में क्यों नहीं आए? लिख कर भी खूब इंतजार कराया!' नसरीन ने प्याली थमाई। चेहरे पर कटाक्ष उभरा। 'बस...', इतना कह बेटे ने मां को ताका। जैनब के चेहरे पर कई साए आकर गुजर गए।

'शादी बहुत शानदार हुई, सब आपको पूछ रहे थे', नसरीन इतना कह कर कमरे से निकल गई।

'मैं डर रही थी कि कहीं....' जैनब ने सफाई दी।

'कैसी बात कर रही हैं अम्मी, जो गुजर गया सो गुजर गया।'

कमरे में खामोशी छा गई। नवाब किसी गहरे सोच में डूब गया। मां ने कमजोरी के कारण आंखें बंद कर लीं। खाली प्याली रखते हुए नवाब ने सविता से नहाने को कहा और खुद ऊपर छत पर चला गया। मिश्राजी का आंगन उसी तरह लिपा-पुता था और नीम के पेड़ के नीचे भैंस की नांद रखी थी। चबूतरे पर दो-चार खटोले पड़े थे। जावेद, नवाब और दिलशाद तीन भाई हैं, जिस में से दिलशाद को मिश्राजी ने गोद लिया है। उसका रहना-सहना सब वहीं था। उसी की शादी थी। नवाब चाहता था, मगर मां ने मना कर दिया कि सारी बिरादरी जमा होगी। इस मौके पर आना ठीक नहीं है। सुन कर नवाब ने गुस्से में कसम खाई कि वह कभी घर नहीं जाएगा। आखिर यह भी कोई बात हुई कि अपनी दोस्ती में मझला लड़का मिश्राजी को गोद दें और वह जब सविता से शादी कर ले तो उसे बिरादरी का डर दिखाया जाए?

मां की बीमारी ने गुस्सा काफूर बना कर उड़ा दिया और वह सविता को लेकर गांव चला आया। वह अकेले भी आ सकता था, मगर वह जानबूझ कर सविता को लाया है ताकि मां सारी बिरादरी के सामने उसे स्वीकार करे या फिर दिलशाद को बहू समेत अपने घर वापस बुलाए।

सविता ने नहाते-नहाते जो नल बंद किया तो नसरीन की गुस्से में भरी आवाज उसके कानों से टकराई। सहम कर उसने जल्दी-जल्दी कपड़े पहने और बाहर निकली, जैनब और नसरीन की बातचीत उसके कानों से साफ-साफ टकराई। 'मुझ से जिसकी कसम चाहे ले लो जो मैंने इन दोनों को बुलाया हो।'

'बस-बस, रहने दीजिए मैं तो कुछ करती-धरती नहीं हूं। दिलशाद की बेगम साहिबा रजिया सुल्तान जो ठहरीं, वह तो सारा वक्त मिश्राजी के घर काटती हैं!'

'धीरे बोलो बहू, पड़ोस का मामला है।'

'असली मामला तो मेरे बच्चों का है, कहां होगी इनकी शादी?' सविता को अलगनी पर साड़ी फैलाते देख नसरीन ने आवाज तेज कर दी।

'थके-हारे सफर से आए हैं, उनको नाश्ता-पानी दो....मैं बीमार हूं वरना....।'

'वरना क्या? जैसे मैं कुछ करती नहीं हूं, रजिया जो नहला जाती है तो समझती हैं कि उसका बड़ा एहसान है....', नसरीन बावर्चीखाने की तरफ बढ़ी।

'तुम्हारे भरोसे बैठती बहू तो जाने कब मुझ पर घास उग आती। यह तो बस मेरा दिल जानता है।' जैनब की आंखें भर आईं।

सविता ने आंगन से और नवाब ने सीढ़ी उतरते हुए सारी बातें सुन लीं। तख्त पर नाश्ता लग चुका था। आलू की सब्जी में शायद नसरीन ने मुट्ठी-भर नमक डाल दिया था, सविता सर झुकाए उसे निगलती गई। इससे बुरा स्वागत उसके घर में नवाब का हुआ था। कोई भी बुरा शब्द बचा नहीं था, जो नवाब को कहा न गया हो, मगर दोनों ने तय कर रखा था कि वे पलट कर किसी का अपमान नहीं करेंगे। नवाब शादी से पहले जैनब के पास आया था, मगर वह गांव के घर से ब्याह करने पर राजी न हुई। मजबूर हो दोनों ने कोर्ट में शादी कर ली।

'जमाना बदल गया है। इस जमाने में अब सब-कुछ जायज है, तो भी....दिल्ली, हो सका तो मैं खुद आ जाऊंगी।'

जैनब तो नहीं जा सकी थी, मगर मिश्राजी बड़े ताया बन कन्यादान जैसा कुछ कर आए थे। नवाब मां से खूब लड़ा था। सब-कुछ सुनकर मां ने सिर्फ इतना कहा था कि भय्या, दूसरे मजहब वालों से दोस्ती हो सकती है, मगर नस्ल नहीं चल सकती है।....अपनी कोख से अपना बच्चा पैदा किया जा सकता है, पराया नहीं।'

'पराया बच्चा इन्सान की नस्ल का नहीं होता है क्या?'

'होता है, मगर दीन-मजहब, कानून, रीति-रिवाज का भी तो कुछ खयाल करो।'

'यह सब कानून अम्मा इन्सान के बनाए हुए हैं। इन्सान ही इन्हें बदल सकता है।'

'बदलो, जो बूता है तो बदलो, मगर पराई लड़की को दर-बदर मत करना।'

'बदलूंगा, जरूर बदलूंगा....बदल कर दिखा दूंगा।'

सविता और नवाब के विवाह को कई साल गुजर गए, मगर आज फिर वही तनाव चंदवा तान कर खड़ा है। अम्मा की शक्ल में न सही, तो नसरीन की आवाज में। सविता के मन का डर कहीं भाग गया। उसने बड़े विश्वास से जूठे बर्तन उठाए और रसोई में जाकर रखे। फिर नवाब से कुछ कहा। नवाब डाक्टर को बुलाने चला गया। सविता ने सास का कमरा साफ किया, चादर बदली, भीगे तौलिये से उनका बदन पोंछा। नसरीन यह सब देख कर मन-ही-मन झुलस रही थी। डाक्टर को आया देख उसके गुस्से का बांध टूट गया। तेजी से चलती हुई कमरे में गई और आवाज दबा कर बोली।

'बड़ा बेटा आ गया तो छोटे की क्या फिक्र....सारी कमाई बीमारी पर लुटा दी मगर....'

'खुदा करे मेरा बेटा इतना कमाए कि अपनी मां का नाम भूल जाए, फिर तुम से कभी पूछे, कुछ याद है हमारी अम्मा का नाम क्या था?'

'क्या हुआ जैनब बहन?' डाक्टर वर्मा कमरे में दाखिल होते हुए बोले।

'बुखार है जो टूटता ही नहीं, आज कोई पंद्रह दिन हो गए हैं।'

'इलाज किसका चल रहा है? नुस्खा दें।'

'हाल बता कर यह दवा हस्पताल से ले आते थे।' इतना कहकर नसरीन कमरे से बाहर निकल गई।

'सरकारी हस्पतालों का हाल बहुत बुरा है, क्या कहा जाए....' डॉ. वर्मा ने नब्ज देखी, आंख, जबान और सीने पर आला लगाकर देखा, फिर कुछ दवाएं लिख दीं।

मिश्राजी, अय्यूब दोनों पड़ोसी थे। मिश्रा के घर औलाद न थी और अय्यूब के घर तीन लड़के और तीन लड़कियों की खेती तैयार थी। दिलशाद अपने सभी भाइयों से अलग था। मारपीट करना, पढ़ाई में दिल न लगाना और सारी दोपहर लंगूर की तरह इस पेड़ से उस पेड़ पर उचकना। अय्यूब को जिस दिन गुस्सा चढ़ जाता, उस दिन दिलशाद की कमर और पीठ जख्मी हो जाते। घर से निकालते तो वह मिश्राजी के घर के सामने पीपल के चबूतरे पर जाकर बैठ जाता और रात को मिश्रा उसे प्यार से घर में ले जाते, हल्दी, चूना लगवाते, खाना खिलाते, फिर घर पहुंचा आते। धीरे-धीरे संबंध बदलने लगा। दिलशाद लंबा-चौड़ा जवान बन गया, अय्यूब का कद छोटा पड़ गया। दूसरे, मिश्राइन ने पिछवाड़े की अमराई की तरफ वाला कमरा दिलशाद को दे दिया। दिलशाद के घर से चले जाने से दोनों भाइयों ने राहत की सांस ली और जैनब ने ऊपर वाले का शुक्र अदा किया कि रोज-रोज की मार-धाड़ से बच्चे की जान छूटी। उधर,

देसी घी में चुपड़ी रोटी और सब्जी जिस प्यार से मिश्राइन खिलाती थीं, उससे एक सहज वात्सल्य उभरा और कुछ वर्षों बाद लोग अय्यूब के दो लड़कों की गिनती करते थे और दिलशाद को मिश्रा का बेटा कहते। नए लोग जब यह सब सुनते तो उलझ कर रह जाते थे। उनको रिश्तों का कोई सर-पैर समझ में नहीं आता था।

रात को जब तीनों भाई मिले तो उनकी आंखें बचपन की यादों से चमक उठीं। दिलशाद ने शादी में न आने का शिकवा करते हुए रजिया को मिलवाया। नई बहू सविता पहली बार ससुराल आई थी। जैनब बिस्तर से लगी थी सो मिश्राइन ने रात के भोजन पर बुला साड़ी, जेवर और सिंदूर की डिबिया दी। गई रात तक हंसी-मजाक चलता रहा। सविता दिल्ली की लड़की थी, शहर में पली-बढ़ी थी। उसके लिए तो यह गांव अजूबा था। ऊपर से रख-रखाव अजीब था।

'अपने मां-बाबा को ले के आना अगली आम की फसल पर।' मिश्राइन ने सविता के गाल पर हाथ फेरा।

'हमारे अम्मा-अब्बा को इस प्यार से कभी न बुलाया', नसरीन ने आंखें मटकाईं।

'उनके घर अम्मा प्यार से आम के टोकरे जो भेजती हैं', रजिया ने हंसते हुए कहा।

दो हफ्ते पलक-झपकते गुजर गए। जैनब भी सही इलाज पाते ही पनप गई और उनका चलना-फिरना पहले की तरह होने लगा। सविता को अपना ससुराल और मिश्रा ताया का घर बड़ा भाया। हर बात में अपनापन था। किसी भी तरह का तनाव न था। ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी जो हल न हो पाती। ऐसी कोई उलझन न थी जो सुलझ न पाती। रात को सविता जब छत पर सोने को गई तो नवाब से बोली :

'मैं तुम्हें पहले से कहीं ज्यादा चाहने लगी हूं।'

'एकाएक यह बारिश कैसी?'

'तुम्हारे घर वाले बहुत अच्छे हैं....'

'तुम्हारा मतलब नसरीन से है?'

'मजाक छोड़ो! सच कह रही हूं, अब तो मैं हर लंबी छुट्टी यहीं गुजारने आऊंगी।'

'और बच्चे, वह राजी हो जाएंगे?'

'बिलकुल, देखना उन्हें कितना मजा आएगा।'

दोनों की मद्धिम हंसी हवा में तैर गई। उनके सपने में इन्सानी नस्ल का एक बच्चा रोज रात को खिलखिलाता है, मगर महीनों गुजर जाने के बाद भी उनका सपना सिर्फ सपना रह गया। इस समय भी वह अपनी साझी-संस्कृति की दहलीज पर खड़े थे। तभी उन्हें दूर से शोर जैसा सुनाई पड़ा।

'नवाब....नीचे उतरो', नीचे से किसी ने पुकारा।

'क्या बात है?' दोनों चकित-से नीचे उतरे।

'सामान बांधो, जीप खड़ी है और....' दिलशाद, जावेद मोहल्ले के दूसरे लड़कों के साथ खड़े थे।

'मगर क्यों? आखिर हुआ क्या है?' नवाब ने परेशान होकर पूछा।

'सवाल-जवाब बाद में...रास्ता लंबा है।'

रजिया और नसरीन ने उनका सामान बांध दिया था जिसको जावेद जीप पर रख रहा था। जैनब ने सविता की बलाएं लीं, बेटे का माथा चूमा और फुसफुसा कर कहा—'मैं दिल्ली मिलने आऊंगी।'

'मगर अम्मा, इस तरह से....कोई बताता क्यों नहीं है?' तंग आकर नवाब ऊंची आवाज में बोला।

'पास के गांव में बेहने की लड़की को कोई चिकवे का लड़का उठा ले गया था। शादी कर के कई माह बाद आज दुल्हन के साथ वह घर लौटा था। लड़की की मां को पता चला तो वह बेटी को घसीट ले गई और अब लड़के की हत्या के लिए उसे ढूंढ़ा जा रहा है....हालात तनावभरे हैं।' दिलशाद का दोस्त बोला।

'यार! मेरा उनसे क्या लेना-देना। फिर मैं कोई....स्पेशल मैरेज एक्ट में हमारी शादी हुई है, अजीब बदतमीजी है!' नवाब अपमान से भर उठा।

'यह लोग कुछ भी कर सकते हैं। तुम्हारी रक्षा हमारा धर्म है भाई।'

'सब को पता है, तुम सविता भाभी के साथ आए हुए हो और....हमें कुछ आशंका-सी है...।'

'घर में सब ठीक है, किस की हिम्मत पड़ेगी भला इधर आने की?' नवाब आक्रोश से बोला।

'मगर घर से बाहर के हालात ठीक नहीं। तुम नहीं जानते, यह भोले-भाले गांव पहले जैसे नहीं रह गए हैं।'

टूटा-सा नवाब सविता के संग जीप पर बैठ गया। रात की चादर को चीरते हुए जीप आगे बढ़ रही थी और नवाब सोच रहा था कि ऐसे हालात में नई इन्सानी नस्ल के बच्चे को पैदा करना क्या जरूरी है! हो गया तो उसे हम क्या देंगे साझी-संस्कृति या बंटा हुआ हिंदुस्तान? ❖

भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएं

सर्वंसहा

सब-कुछ
तुम्हीं पर नहीं है निर्भर
भाई सूरज

यह रज भी एक चीज है
सारी सज-धज
उसी में से अंकुरी है

धुरी पर अपनी
वह घूमती है
तुम नहीं

निष्क्रिय हो यानी
तुम
सक्रिय वह है

प्रिय है इसीलिए
वह तुमसे ज्यादा
तत्त्वों को

पानी उस पर
बरसता है
बहता है

वातावरण
छाया की तरह
उस पर छाया रहता है

ठीक हो तुम
ठीक है तुम्हारी गरमी
मगर

नरमी उसकी भी तो
समझो जरा
क्या कर सकते थे तुम
होती नहीं अगर
होती नहीं सर्वंसहा हमारी धरा!

•

पश्चात्-ताप

मैं तुम्हें
सूने में से चुन लाया हूं

क्या करते तुम वहां अकेले
झेलते झमेले हवा के थोड़ी देर

हिलते-डुलते उसके इशारों पर
और शायद फिर बिखर जाते

यों मैं फूल कदाचित् ही
चुनता हूं

मगर अकेले थे तुम वहां
कम से कम
दो होंगे हम यहां

अभी-अभी मेरे मन में मगर
यह एक खटका आया कि
जाए मुमकिन है कोई तितली
और न पाए वह तुम्हें वहां
जहां तुम उसे मिल जाते थे

या गूंजे हिर-फिर कर
कोई भौंरा आस-पास
परेशानी में

यह एक खटका
अभी-अभी मेरे मन में आया

सोच में पड़ गया हूं
क्या जाने मैं तुम्हें
ठीक लाया या नहीं लाया!

•

अनुत्तर योग

प्रार्थना का जवाब नहीं मिलता
हवा को हमारे शब्द
शायद आसमान में
हिला जाते हैं
मगर हमें उनका उत्तर नहीं मिलता

बंद नहीं करते
तो भी हम प्रार्थना
मंद नहीं करते हम
अपने प्रणिपातों की गति

धीरे-धीरे
सुबह-शाम ही नहीं
प्रतिपल
प्रार्थना का भाव
हम में जागता रहे
ऐसी एक कृपा हमें मिल जाती है

खिल जाती है
शरीर की कंटीली झाड़ी

प्राण बदल जाते हैं

तब वे शब्दों का उच्चारण नहीं करते
तल्लीन कर देने वाले स्वर गाते हैं

इसलिए मैं प्रार्थना छोड़ता नहीं हूं
उसे किसी उत्तर से जोड़ता नहीं हूं! ❖❖

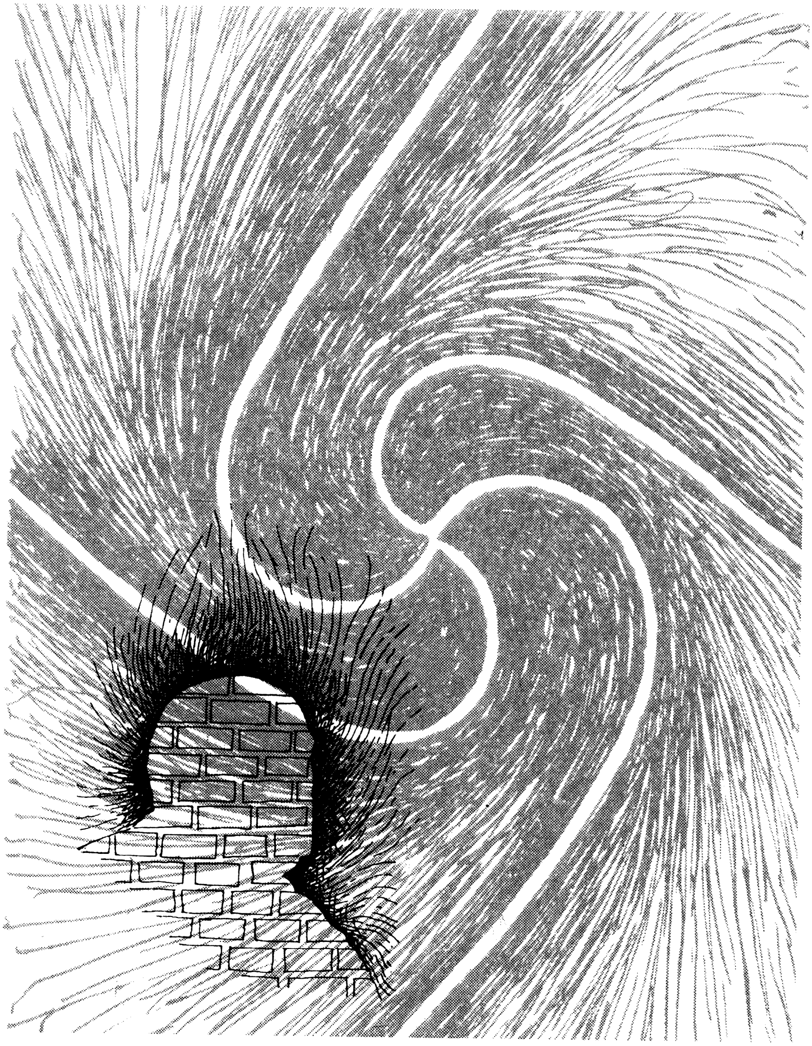

शीलन

हमारी आध्यात्मिक समझ ही हमारी ताकत है। एक राष्ट्र के तौर पर हमने हमलावरों की मार-काट और उपनिवेशवाद के संहार को झेला है। हम अपने समाज में दरारों और विभाजनों के साथ सामंजस्य बैठाना सीख गए हैं। लेकिन, इस प्रक्रिया के दौरान हमने अपने लक्ष्यों और अपेक्षाओं का कद कम किया है। हमें अपने विशाल दृष्टिकोण को दोबारा प्राप्त करना होगा तथा अपनी विरासत और समझ में अपने जीवन को समृद्ध बनाना होगा। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र से उन्नति करने का अर्थ यह नहीं है कि हम आध्यात्मिक विकास को रोक दें। हमें अपनी आंतरिक ताकत के आधार पर विकास का अपना मॉडल इसी भूमि पर तैयार करना होगा।

—ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

ज्ञान नहीं; मुक्ति है लक्ष्य

स्वामी विवेकानंद

मुक्त पुरुष के लिए संघर्ष का कोई अर्थ नहीं, किंतु हमारे लिए उसका अर्थ है, क्योंकि नाम-रूप ही जगत की सृष्टि करता है। वेदांत में संघर्ष या प्रयत्न के लिए स्थान है, पर भय के लिए नहीं। जब हम अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेंगे, तब सभी भय दूर हो जाएंगे। यदि अपने को बद्ध सोचेंगे तो बद्ध ही बने रहेंगे और यदि मुक्त सोचेंगे तो मुक्त हो जाएंगे।

इस प्रपंचमय जगत में हम जिस स्वतंत्रता का अनुभव कर सकते हैं, वह तो सच्ची स्वतंत्रता की झलक मात्र है, है नहीं सच्ची स्वतंत्रता। मैं इससे सहमत नहीं कि 'प्रकृति के नियमों का पालन करना स्वतंत्रता है।' मैं नहीं जानता कि इस कथन का तात्पर्य क्या है। यदि हम मानव-जाति की उन्नति के इतिहास का अध्ययन करें, तो मालूम हो जाएगा कि वह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन ही है, जो कि उस उन्नति का कारण है। यह कहा जा सकता है कि निम्नतर नियमों पर उच्चतर नियमों द्वारा विजय प्राप्त की गई। पर वहां भी, विजयेच्छु मन केवल मुक्त होने का ही प्रयत्न कर रहा था; और

"

मनुष्य तो मुक्त ही है, किंतु उसे इस सत्य को जानना पड़ेगा। वह प्रतिक्षण इसे भूल जाता है। जाने या बिना जाने, अपने इस मुक्तस्वरूप को पहचान लेना—यही प्रत्येक मानव का संपूर्ण जीवन है। ज्ञानी और अज्ञानी में भेद यही है कि ज्ञानी इसका जान-बूझकर अन्वेषण करता है और अज्ञानी बिना जाने। अणु से लेकर नक्षत्र तक—सभी मुक्त होने का ही प्रयत्न कर रहे हैं।

ज्योंही उसे ज्ञात हुआ कि संघर्ष भी नियम ही के अंतर्गत है, तो उसने उसे भी जीतने का प्रयत्न किया। अतः प्रत्येक दशा में मुक्ति ही अभीष्ट है—आदर्श है। वृक्ष कभी भी नियम का उल्लंघन नहीं करते। गाय को चोरी करते कभी नहीं देखा, घोंघे को झूठ बोलते कभी नहीं सुना। किंतु, तो भी वे मानव से बढ़कर नहीं हैं। यह जीवन मानो मुक्ति की—स्वतंत्रता की—एक महान घोषणा है। और यदि हम नियमों के क्रीत-दास बने रहे तो यह गुलामी हमें केवल जड़ बना देगी, निर्जीव कर देगी—वह चाहे समाज के क्षेत्र में हो, राजनीति के, या धर्म के।

बहुत-से नियमों का होना मृत्यु का निश्चित लक्षण है। किसी समाज में यदि नियमों की संख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ जाए तो वह उसके शीघ्र विनाश का निश्चित चिह्न है। यदि हम भारत की विशेषताओं का अध्ययन करें, तो देखेंगे कि हिंदुओं के समान किसी भी जाति में इतने अधिक नियम नहीं हैं; और इसका परिणाम है—राष्ट्रीय मृत्यु। पर, हिंदुओं में एक विशेष बात भी रही है—उन्होंने धर्म के क्षेत्र

में लोगों को किसी विशेष मत या सिद्धांत में जकड़ने की कभी चेष्टा नहीं की; और इसीलिए उनके धर्म का सब से अधिक विकास हुआ है। शाश्वत नियम स्वतंत्रता नहीं हो सकता, क्योंकि यह कहना कि शाश्वत भी नियम के अंतर्गत है, उसे अशाश्वत या सीमित बना देना है।

सृष्टि-कार्य में ईश्वर का कोई हेतु नहीं है, क्योंकि यदि हो तो उसमें और मनुष्य में फिर अंतर ही क्या रहा? उसे किसी हेतु की आवश्यकता ही क्या? यदि होती, तो वह उससे बद्ध हो जाता; और तब तो हमें उसके अतिरिक्त उससे भी बड़ी कोई वस्तु माननी पड़ती। उदाहरणार्थ, गलीचा बुनने वाला एक गलीचा तैयार करता है। गलीचा बुनने की जो भावना थी, वह उसके बाहर और उससे अधिक ऊंची थी। पर अब यह बताएं कि ऐसी भावना या विचार कहां है, जिसका कि ईश्वर अनुसरण करे? जिस प्रकार एक महान सम्राट भी कभी-कभी गुड्डियों से खेल लेता है, उसी प्रकार ईश्वर भी इस प्रकृति के साथ खेल कर रहे हैं। इसे ही हम नियम कहते हैं। क्यों? इसलिए कि हम इस खेल के निर्विघ्न घटने वाले केवल छोटे-छोटे अंशों को ही देख सकते हैं। नियम की हमारी समस्त धारणाएं एक छोटे-से अंश में ही प्रतिबद्ध हैं।

यह कहना बुद्धिहीनता है कि नियम अनंत हैं, या चिरकाल पत्थर नीचे की ही ओर गिरेगा। यदि तर्क-बुद्धि का आधार अनुभव हो, तो पचास लाख वर्ष पहले यह देखने के लिए कौन था कि पत्थर गिरते हैं या नहीं? अतएव, नियम मनुष्य में स्वभावसिद्ध नहीं है। मनुष्य के संबंध में यह एक विज्ञानसिद्ध बात है कि हम जहां से प्रारंभ करते हैं, वहीं समाप्त भी होते हैं। वास्तव में हम क्रमशः नियम के बाहर होते जाते हैं और अंत में हम उससे पूर्णतया मुक्त हो जाते हैं, पर हमें पूरे जीवन के अनुभव भी साथ ही मिल जाते हैं। हमारा प्रारंभ परमात्मा और मुक्ति से होता है, और लय भी इन्हीं में होगा। ये नियम बीच की स्थिति में ही होते हैं, जहां से होकर हमें मार्ग तय करना पड़ता है। हमारा वेदांत सदैव मुक्ति की ही घोषणा करता है। नियम का विचार-मात्र ही वेदांती को डरा देता है; और शाश्वत नियम तो उसके लिए एक बड़ी ही भयानक बात है, क्योंकि यदि नियम शाश्वत हो तो उससे छुटकारे की संभावना ही नहीं। यदि उसे चिरकाल के लिए बंधन में जकड़ देने वाला कोई शाश्वत नियम हो, तो फिर उसमें और एक तृण में अंतर ही क्या? हम नियम के इस काल्पनिक विचार में विश्वास नहीं करते।

हम कहते हैं कि हमें मुक्ति की ही खोज करनी है, और वह मुक्ति है परमात्मा। वह वही आनंद है, जो हर वस्तु में निहित है; किंतु जब मनुष्य उसे किसी ससीम वस्तु में ढूंढ़ता है, तो उसका कण-मात्र पाता है। चोर को चोरी करने में वही आनंद मिलता है, जो भक्त को भगवान में; किंतु चोर उस आनंद का केवल कण-मात्र पाता है और साथ ही दुख का ढेर भी। यथार्थ आनंद परमात्मा है। भगवान आनंदस्वरूप हैं, प्रेमस्वरूप हैं, मुक्तिस्वरूप हैं; और जो कुछ भी बंधनकारक है, वह भगवान नहीं।

मनुष्य तो मुक्त ही है, किंतु उसे इस सत्य को जानना पड़ेगा। वह प्रतिक्षण इसे भूल जाता है। जाने या बिना जाने, अपने इस मुक्तस्वरूप को पहचान लेना—यही प्रत्येक मानव का संपूर्ण जीवन है। ज्ञानी और अज्ञानी में भेद यही है कि ज्ञानी इसका जान-बूझकर अन्वेषण करता है और अज्ञानी बिना जाने। अणु से लेकर नक्षत्र तक—सभी मुक्त होने का ही प्रयत्न कर रहे हैं। अज्ञानी पुरुष एक छोटी-सी परिधि में स्वतंत्र होने से ही—भूख-प्यास के बंधनों से मुक्त होने से ही—संतुष्ट हो जाता है। किंतु, ज्ञानी अनुभव करता है कि इनसे भी दृढ़तर बंधन हैं—जिन्हें छिन्न करना है।

हमारे दार्शनिकों के मतानुसार, मुक्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है। ज्ञान लक्ष्य नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान एक मिश्रण या यौगिक पदार्थ है। वह शक्ति और स्वतंत्रता—इन दोनों का योग है, पर अभीष्ट केवल स्वतंत्रता ही है। मनुष्य इसी के लिए प्रयत्न करता है। केवल शक्ति का होना ही ज्ञान नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिक विद्युत्-शक्ति के धक्के को कुछ मीलों तक ही भेज सकता है, परंतु प्रकृति तो उसे अपरिमित दूरी तक भेज सकती है। तो फिर, प्रकृति की मूर्ति स्थापित कर हम उसकी पूजा क्यों नहीं करते? हम नियम नहीं चाहते, हम चाहते हैं नियम को तोड़ने की सामर्थ्य। हम नियमों से बाहर चले जाना चाहते हैं। यदि हम नियमों से बंधे हुए हैं, तो मिट्टी के ढेले की भांति निर्जीव ही हैं। प्रश्न यह नहीं है कि हम नियमातीत हैं या नहीं; किंतु यह धारणा कि हम नियमातीत हैं, समस्त मानव-इतिहास की आधारशिला है। उदाहरणार्थ, कोई मनुष्य जंगल में रहता है, उसकी न कोई शिक्षा हुई है और न उसे कुछ ज्ञान है। वह एक पत्थर के गिरने की प्राकृतिक घटना को देखता है और समझता है कि वह स्वतंत्रता के द्वारा हुई है। वह समझता है कि पत्थर में जीव या आत्मा है, और इसका केंद्रीय भाव है स्वतंत्रता। पर ज्योंही उसे पता लगता है कि पत्थर का गिरना उसके वश की बात न होकर अवश्यंभावी है, त्योंही वह उसे

प्राकृतिक व्यापार—निर्जीव यांत्रिक कार्य—कहने लगता है। मैं चाहे तो सड़क पर जाऊं या न जाऊं—यह मेरे मन की बात है। मनुष्य होने के नाते मेरी यही महानता है। पर, यदि यह बात हो कि मुझे वहां जाना ही पड़े, तो मैं अपनी स्वतंत्रता खो बैठता हूं और एक यंत्र-सा बन जाता हूं।

अनंत शक्तिसंपन्न होते हुए भी प्रकृति केवल एक यंत्र ही है। एकमात्र स्वतंत्रता ही—मुक्ति ही—चेतन जीवन का सार है। वेदांत कहता है कि जंगल में रहने वाले उस मनुष्य का विचार ठीक है; उसकी सूझ ठीक है, यद्यपि उसकी व्याख्या ठीक नहीं। वह प्रकृति को स्वतंत्रतामय देखता है, नियम-बद्ध नहीं। हम भी इन सब मानवी अनुभवों के पश्चात् वैसा ही सोचने लगेंगे, पर एक अधिक दार्शनिक अर्थ में। उदाहरणार्थ, मैं सड़क पर जाना चाहता हूं। मुझे अपनी इच्छाशक्ति से प्रेरणा मिलती है, और मैं रुक जाता हूं। अब, सड़क पर जाने की इच्छा और वहां पहुंचने के बीच की अवधि में मैं एक-समान रूप से (uniformly) कार्य कर रहा हूं। व्यवहार (कार्य) की एक-समानता (uniformity) को ही नियम कहा जाता है। मैं देखता हूं कि मेरे कार्यों की यह जो एक-समानता है, वह समय के अत्यंत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटी हुई है और इसलिए मैं अपने कार्यों को नियमाधीन नहीं कहता। मुझे प्रतीत होता है कि मैं स्वतंत्र रूप से कार्य करता हूं। मैं पांच मिनट तक चलता हूं; किंतु उस पांच मिनट चलने के कार्य के पहले—जो कि एक-समान कार्य है—इच्छाशक्ति का कार्य हुआ था, जिसने मुझे चलने की प्रेरणा दी। यही कारण है कि मनुष्य अपने को मुक्त समझता है, क्योंकि उसके सभी कार्य समय के छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त किए जा सकते हैं; और यद्यपि इन छोटे-छोटे टुकड़ों में से प्रत्येक के भीतर एक-समानता है, तथापि उसके बाहर वह एक-समानता नहीं।

इस असमानता के अनुभव में ही स्वतंत्रता का भाव निहित है। प्रकृति में हम एक-समान रूप से घटने वाले कार्यों के अतिदीर्घ खंडों को देखते हैं, पर इन खंडों में से भी प्रत्येक के आरंभ और अंत में स्वतंत्र प्रेरणाएं अवश्य ही होनी चाहिए। यह स्वतंत्र प्रेरणा प्रारंभ में ही दी गई और तब से वह कार्य करती रही है, पर ये समय-खंड हमारे समय-खंडों से कहीं अधिक दीर्घ होते हैं। दार्शनिक रूप से विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि हम स्वतंत्र नहीं हैं। फिर भी, हमारे भीतर यह भाव बना ही रहता है कि हम स्वतंत्र हैं—मुक्त हैं। अब हमें यह समझना है कि यह भाव आता कैसे है? हम देखते हैं कि हममें ये दो प्रेरणाएं हैं। हमारी बुद्धि बतलाती है कि हमारे प्रत्येक कार्य का कुछ कारण होता है और साथ ही साथ, प्रत्येक मनःस्पंदन के साथ हम अपने स्वतंत्र स्वभाव की घोषणा भी कर रहे हैं। इस पर वेदांत का समाधान यह है कि अंदर तो स्वतंत्रता है—आत्मा तो वास्तव में मुक्त है—पर, इस आत्मा के कार्य शरीर और मन के द्वारा होते हैं, जो कि स्वतंत्र नहीं हैं।

ज्योंही हम प्रतिक्रिया करते हैं, हम दास बन जाते हैं। कोई व्यक्ति मुझे दोष देता है, तो मैं तुरंत क्रोध के रूप में प्रतिक्रिया करता हूं। यह जो थोड़ी-सी उत्तेजना उसने मुझमें उत्पन्न कर दी, मुझे गुलाम बना लेती है। अतः, हमें अपनी स्वतंत्रता प्रमाणित करनी पड़ेगी। महात्मा वे ही हैं, जो श्रेष्ठ महाविद्वान व्यक्ति, या नीच, दुष्ट मनुष्य, या क्षुद्रतम पशु में न तो महात्मा देखते हैं, न मनुष्य, न पशु, किंतु सभी में उसी एक भगवान को देखते हैं। इस जीवन में ही उन्होंने संसार पर विजय प्राप्त कर ली है और वे इस समता में दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित हो गए हैं। परमात्मा पवित्र और सब के लिए समान है। अतः ऐसा महात्मा मनुष्य-देह में प्रकट प्रत्यक्ष ईश्वर ही है। हम सब इसी लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं; और प्रत्येक प्रकार की उपासना, मानव का प्रत्येक कार्य इसी की प्राप्ति का साधन है। धनार्थी भी मुक्त होने का प्रयत्न कर रहा है—वह गरीबी के बंधन से मुक्त होना चाहता है। मनुष्य का प्रत्येक कार्य उपासना है, क्योंकि निहित भाव है मुक्ति की प्राप्ति और सभी कार्यों का उद्देश्य—अपरोक्ष या परोक्ष रूप से वही होता है। केवल यह बात ध्यान में रखनी होगी कि उसमें बाधा पहुंचाने वाले सभी कार्य निषिद्ध हैं। समस्त विश्व ज्ञात या अज्ञात रूप से उपासना ही कर रहा है। उसे केवल इस बात का ज्ञान नहीं है कि जब वह गाली देता है तो भी वह उसी भगवान की एक प्रकार से उपासना ही कर रहा है, जिसे उसने गाली दी। क्योंकि जो लोग गाली दे रहे हैं, वे भी मुक्ति के लिए ही प्रयत्न कर रहे हैं। वे कभी यह नहीं सोचते कि किसी वस्तु की प्रतिक्रिया करने से वे अपने-आप को उसका दास बना रहे हैं। किसी प्रकार की प्रतिक्रिया न होने देना एक कठिन बात है।

यदि हम इस विश्वास को कि हममें ससीमता या त्रुटियां हैं, दूर कर सकें तो हमारे लिए सब-कुछ करना अभी संभव हो जाए। यह केवल समय का प्रश्न है। शक्ति बढ़ाएंगे, तो समय कम लगेगा। उस प्रोफेसर की बात याद रखें, जिसने संगमरमर के बनने का रहस्य जानकर बारह वर्ष में ही संगमरमर तैयार कर लिया, जब कि प्रकृति द्वारा उसके बनने में शताब्दियां लग जाती हैं। ❖

सम्यक् दर्शन : एक आध्यात्मिक रत्न

मुनि मदनकुमार

जैसे दूध का सार नवनीत है, वैसे ही सम्यक् दर्शन को अध्यात्म की दृष्टि से जीवन का सार कहा जा सकता है। अध्यात्म की दृष्टि से जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है और मोक्ष रूपी भव्य भवन का आदि प्रस्तर सम्यक् दर्शन है। मोक्ष-प्राप्ति का साधन है चारित्र और चारित्र का आधारभूत तत्त्व है—सम्यक् दर्शन। इसे यों भी कहा जा सकता है कि सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं होता और चारित्र के बिना मोक्ष नहीं हो सकता। इस तरह सम्यक् दर्शन आध्यात्मिक रत्न है और आत्मविकास का बीज मंत्र भी। मनुष्य को भौतिक रत्न भी सर्वदा सुलभ नहीं होता, तब आध्यात्मिक रत्न कैसे सुलभ होगा? यह जिज्ञासा भी स्वाभाविक ही है कि सम्यक् दर्शन क्या है, वह कैसे प्राप्त होता है? संक्षेप में कहा जा सकता है कि स्वयं को जानना ही सम्यक् दर्शन है। आत्मा का ज्ञान, श्रद्धान और अनुभूति से सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होती है।

आत्म-स्वरूप को जानने के लिए निम्नोक्त छः बातों का अनुचिंतन करना चाहिए—

> “
>
> *जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता है और दर्शन से श्रद्धा करता है। इससे स्पष्ट है कि जानना अलग है और श्रद्धान अलग है। तात्त्विक दृष्टि से देखा जाए तो 'जानना' ज्ञानावरणीय कर्म का क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। जबकि 'श्रद्धान' दर्शनमोहनीय कर्म का औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। तत्त्व को जानना पर्याप्त नहीं है, उसके प्रति श्रद्धान जरूरी है।*

- मैं आत्मा हूं और उसका त्रैकालिक अस्तित्व है।
- मेरी आत्मा अकेली है और वही सुख-दुख की कर्ता है। शुभाशुभ कर्म स्वकृत होते हैं, परकृत नहीं।
- अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है। सत्य वचन है कि कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता।
- आत्मा ही कर्म की कर्ता है, वही कर्म का निरोध करने वाली है और वही कर्मों का निर्जरण करने वाली है। श्रुत और चारित्र-धर्म की आराधना से बंधन को तोड़कर आत्मा मोक्ष का वरण कर सकती है।
- आत्मा का पूर्वजन्म और पुनर्जन्म होता है।
- अनादिकाल से मेरी आत्मा इस दुख-बहुल संसार में है और इस चतुर्गति-रूप संसार में परिभ्रमण कर रही है। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत शक्ति से संपन्न मेरी आत्मा कर्मावृत एवं कर्म-कलुषित होने से बार-बार आधि, व्याधि और उपाधि से प्रताड़ित हो रही है। हर जीव के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं, इसलिए संसार में यह विविधता दृष्टिगोचर हो रही है।

महत्ता जिनशासन की

जितने भी अर्हत् हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्य में होने वाले हैं—उन सबके प्रवचन का आधार सम्यक् दर्शन है। अर्हत् यथार्थभाषी और यथार्थ का बोध देने वाले होते हैं। जो तत्त्व जैसा है, उसे वैसा ही समझना सम्यक् दर्शन है। आध्यात्मिक विषयों को यथार्थ रूप में जानना ही सम्यक् दर्शन है। इससे दृष्टि की निर्मलता प्राप्त होती है। सम्यक् दर्शन आंतरिक प्रकाश है, जिससे जीवन का पथ आलोकित होता है। दृष्टि की शुचिता से ही आचरण की शुचिता उपलब्ध होती है। दृष्टि की शुचिता के लिए जिन-वाणी सबल आधार है, वह अनुभूतियों से निकला हुआ सच है। जिन-शासन ने सर्वज्ञता के आलोक में तत्त्व का निरूपण किया है। अतः वह परिपूर्ण बोध, दृष्टि और दर्शन है। जिन-शासन के महत्त्व को रेखांकित करते हुए श्रीमज्जयाचार्य ने लिखा—

जिन शासन जयकारियो, शासन महा सुखकार।
शासन शरणे आविया, ते पाम्या भव पार।।

मोक्ष का आधार

भगवान महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में कहा— **नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे**। जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता है और दर्शन से श्रद्धा करता है। इससे स्पष्ट है कि जानना अलग है और श्रद्धान अलग है। तात्त्विक दृष्टि से देखा जाए तो 'जानना' ज्ञानावरणीय कर्म का क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। जबकि 'श्रद्धान' दर्शनमोहनीय कर्म का औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। तत्त्व को जानना पर्याप्त नहीं है, उसके प्रति श्रद्धान जरूरी है। जैसे 'मोक्ष है'—यह जान लेना ज्ञान है। 'मोक्ष का अस्तित्व निश्चित रूप से है'—यह आस्था श्रद्धान है। कोई यह सोचे कि 'मोक्ष किसने देखा है?' यह अश्रद्धान की स्थिति है। यथार्थ ज्ञान को श्रद्धा में बदलने के लिए उसके प्रति रुचि, प्रतीति, विश्वास और आस्था का जागरण जरूरी है। भगवान ने मोक्ष के चार मार्ग बतलाए हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। ये चारों आवश्यक हैं और चारों मिलकर ही मोक्ष-मार्ग बनते हैं। चारित्र और तप एक-जीवन आश्रित है, इसलिए परलोक में साथ नहीं जाते हैं। किंतु ज्ञान और दर्शन परलोक में भी साथ चलते हैं। अनेक भवों (जन्मों) में सहगामी बने रहते हैं। ज्ञान और दर्शन के बीच सहसंबंध भी हैं। चूर्णिकार के शब्दों में—जहां सम्यक्त्व है, वहां निश्चित रूप से ज्ञान है और जहां ज्ञान है, वहां निश्चित रूप से सम्यक्त्व है। इस तरह इन दोनों में परस्पर संबंध है। सभी सम्यक्त्वी ज्ञानी कहलाते हैं और सभी ज्ञानी सम्यक्त्वी। इसे यों समझना चाहिए कि सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र नहीं होता और चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता। इस तरह इनमें अविनाभावी संबंध है। सूत्र में भगवान ने कहा है—'श्रद्धा परम दुर्लभा।'—धर्म का श्रवण और तत्त्व का बोध हो जाने पर भी उसमें श्रद्धा का होना कठिन है।

सम्यक् श्रद्धा ही सम्यक्त्व है और यही मोक्ष का आधार है। अनेक विद्वत् व्यक्ति विविध धर्मों की मान्यताओं को जान लेते हैं और उसे प्रभावक ढंग से प्रस्तुत भी कर देते हैं, किंतु फिर भी यथार्थ तत्त्व के प्रति श्रद्धा का विकास होना दुष्कर है। इसीलिए भगवान ने श्रद्धा को दुर्लभ बताया है। पांडित्य और प्रवचन शैली का विकास होने पर 'श्रद्धा' आ जाए, यह नियम नहीं है। मनुष्य मतवादों के घेरे से बाहर निकल पाए और यथार्थ तत्त्व को छू पाए, इसके लिए दृष्टि की निर्मलता चाहिए। सुलझा हुआ व्यक्ति स्वल्प समय में श्रद्धाशील बन जाता है। इसके लिए आंतरिक निर्मलता भी चाहिए और तत्त्वबोध भी। कोरा शास्त्र-ज्ञान काम नहीं देता। अंतःकरण की निर्मलता इसमें सहायक बनती है। भगवान महावीर के जीव ने नयसार के भव में मुनियों के स्वल्प सान्निध्य को पाकर ही सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। जो व्यक्ति तत्त्व के प्रति आकर्षित और श्रद्धासिक्त हो जाता है, वह सम्यक्त्वी बन जाता है। सम्यक्त्व आत्मज्ञान की एक लौ है जो अमूर्च्छा के विकिरण पैदा करती है। इससे आंतरिक परिवेश बदल जाता है।

सम्यक्त्व के सूत्र

सम्यक्त्व का एक आधार है—देव, गुरु और धर्म का बोध। इस रत्नत्रयी को स्वीकार करना सम्यक्त्व प्राप्ति की दिशा में एक प्रशस्त प्रयास है। देव, गुरु और धर्म का स्वरूप क्या है? जीवन-निर्माण में इनकी मूल्यवत्ता क्या है? लक्ष्य-प्राप्ति में ये कैसे सहायक बनते हैं? इन सब तथ्यों के अवबोध से समाधि और स्थितप्रज्ञता का विकास होता है। इसलिए रत्नत्रयी के प्रति आस्थाशील होना सर्वाधिक मूल्यवान घटक है। सम्यक्त्व की आराधना करने वाला सदा इस संस्कार को पुष्ट करता है—'अर्हत् मेरे देव हैं, शुद्ध साधु मेरे गुरु हैं और केवलीभाषित तत्त्व मेरा धर्म है। मैं हमेशा इस रत्नत्रयी की उपासना करता रहूं।' समतासेवी बनने के लिए सम्यक्त्व को पहला पगथिया

समझना चाहिए। सम्यक्त्व को जानने वाला और जीने वाला पांच विशिष्ट गुणों का पुंज या समवाय बन जाता है। जैसे सूर्य के उदित होने पर तिमिर अस्तित्वहीन हो जाता है, वैसे ही जीवन में सम्यक्त्व का आलोक प्रस्फुटित होने पर व्यक्ति मानसिक शांति, मुमुक्षा, अनासक्ति, अनुकंपा और आस्था जैसे गुणों से लाभान्वित हो जाता है। वह वर्तमान जीवन के बारे में ही नहीं, भावी जीवन के बारे में भी सोचने लगता है। उसकी पवित्र सोच होगी—मुझे आगे भी जाना है। मैं साथ में क्या ले जाऊंगा? फिर मैं भौतिकता में सदा-सर्वथा निमग्न क्यों रहूं? इस तरह उसके जीवन में रांग और विराग का संतुलन स्थापित हो जाता है। वह संसार में रहकर भी कमलवत् रहने का प्रयास करता है। उसकी सोच में सामंजस्य, लचीलापन और यथार्थवाद का पुट यथासंभव बना रहेगा। वह वर्तमान जीवन में आत्मोत्कर्ष के लिए प्रयासरत रहेगा तथा अपने जीवन को अन्यथा प्रकार से जीएगा। इस सचाई को उजागर करते हुए कहा है—

जे समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुंब प्रतिपाल।
अंतर में न्यारा रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल।।

सम्यक्त्व की निष्पत्ति

सम्यक्त्वी पुरुष की दृष्टि परिणामभद्रता पर केंद्रित होती है। पौद्गलिक सुख आपातभद्र तो होते हैं, किंतु परिणाम की दृष्टि से विरस होते हैं। सम्यक्त्वी इस सचाई को जान लेता है। त्याग-प्रधान जीवन परिणामभद्र होता है जबकि भोग-प्रधान जीवन आपातभद्र। सम्यक्त्वी परिणामदर्शी बनकर जीता है। श्रीमज्जयाचार्य ने परिणाम-दर्शन की वृत्ति को एक कथा के माध्यम से उजागर किया है। एक किसान के घर में गाय और बछड़े के साथ मेमना भी रहता था। मेमने को मालिक द्वारा दी जाने वाली गरिष्ठ खाद्य सामग्री को देखकर बछड़ा ईर्ष्याग्रस्त हो गया। उसे लगा कि मालिक पक्षपात कर रहा है, अतः उसने रुष्ट होकर गाय का दूध पीना ही छोड़ दिया। गाय ने पूछा—वत्स! दूध क्यों नहीं पी रहे हो? बछड़ा बोला—मां! मालिक घोर अन्याय कर रहा है। तुम दूध देती हो, जबकि मालिक तुम्हें केवल सूखी घास डालता है और मेमना कुछ नहीं देता है, जबकि मालिक उसे गुड़, तिल आदि पौष्टिक भोजन देता है। गाय बोली—वत्स! हमारा भोजन सादा है, इसलिए हमारे पर कोई विपत्ति आने वाली नहीं है। विपत्ति मेमने पर ही आने वाली है। यों कहकर गाय ने बछड़े को संतुष्ट कर दिया। कुछ दिन बाद किसान के घर पर मेहमान आए और मांस की जरूरत पड़ी। किसान शस्त्र लेकर बाड़े में आया। बछड़ा यह दृश्य देखकर भयाक्रांत हो गया और इतस्ततः पलायन करने लगा। गाय ने उसे अभय बनने की सलाह दी। देखते ही देखते किसान ने मेमने का वध कर दिया। इस वीभत्स दृश्य को देखकर बछड़ा समझ गया कि मेमने का जीवन परिणामविरस था और हमारा जीवन परिणामभद्र है। इस घटना-प्रसंग पर टिप्पणी करते हुए श्रीमज्जयाचार्य ने लिखा—

झबकन्ती तरवार उघाड़ी, चमक्यो बाछड़ पाछो।
मां कहे तूं क्यूं चमकै, अज नों देख तमाशो।।

सम्यक्त्व के बाधक तत्त्व

बढ़ते हुए देववाद, पूजावाद और आकांक्षावाद से सम्यक्त्व की प्राप्ति पर प्रश्नचिह्न लग रहा है। अनगिनत देव हैं, अनेकविध पूजा-पद्धतियां हैं और आकाश के समान अनंत आकांक्षाएं हैं। जैसे कहा जाता है कि हाथी के पैर में सब पैर समा जाते हैं, वैसे ही अर्हत् देव की आराधना-उपासना में सब-कुछ समाहित हो जाता है। जीवन में आकांक्षाएं बढ़ेंगी तो दुख भी बढ़ेगा, असंतोष भी बढ़ेगा और मानसिक अशांति भी पनपेगी। तब मार्गांतरीकरण क्यों न किया जाए? सम्यक्त्व की आराधना के लिए इन तीनों का—देववाद, पूजावाद और आकांक्षावाद का नियमन जरूरी है। आगम की शिक्षा तो यह भी है कि सम्यक्त्वी व्यक्ति को शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, पर-पाषंड-प्रशंसा और पर-पाषंड-परिचय से बचना चाहिए। इनसे सर्वथा बचकर ही सम्यक्त्व को निर्मल रखा जा सकता है। तत्त्व या लक्ष्य के प्रति संदिग्ध होना शंका दूषण है। लक्ष्य से विपरीत दृष्टिकोण में अनुरक्ति होना कांक्षा दूषण है। सत्याचरण का फल-प्राप्ति या लक्ष्य-पूर्ति के साधनों के प्रति संशय होना विचिकित्सा दूषण है। लक्ष्य से प्रतिगामी पुरुष या सिद्धांत की प्रशंसा करना और रागात्मक संबंध जोड़ना क्रमशः पर-पाषंड-प्रशंसा और पर-पाषंड-परिचय दूषण हैं।

सम्यक्त्व का तात्त्विक विमर्श

सम्यक्त्वी जीव के मिथ्यात्व आश्रव नहीं होता है, यह नियमा है तथा अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग आश्रव नहीं होते हैं, यह भजना है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् मिथ्यात्व का पाप किंचित् भी नहीं लगता है। प्रथम और तृतीय गुणस्थानवर्ती जीवों को छोड़कर शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक्त्वी होते हैं। निश्चय नय की दृष्टि

से सम्यक्त्व की प्राप्ति उसी जीव को होती है, जिसके दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियां—मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म की चार प्रकृतियां—अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया एवं लोभ क्षय, उपशम या क्षयोपशम को प्राप्त होती हैं। व्यवहार नय की दृष्टि से सम्यक्त्वी में **शम**—तीव्रतम क्रोध आदि कषायों का उपशमन, **संवेग**—मोक्ष की अभिलाषा, निर्वेद-संसार से विरक्ति, **अनुकंपा**—प्राणी मात्र के प्रति करुणा भाव और **आस्तिक्य**—आत्मा, कर्म और देव-गुरु-धर्म के प्रति आस्था का उद्‌भव होता है। सम्यक्त्व की प्राप्ति के पश्चात् इहलोक और परलोक, दोनों ही सुधर जाते हैं। जीवन में आयुष्य का बंध एक ही बार होता है और यदि वह सम्यक्त्व दशा में हो तो उसके सात प्रकार का आयुष्य—भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क देव, नरक और तिर्यंच गति तथा स्त्रीवेद और नपुंसक वेद कभी नहीं बंधता है। इससे सिद्ध है कि सम्यक्त्वी जीव शुभ आयुष्य का बंधन करते हैं। महामना आचार्यश्री भिक्षु की दृष्टि में किसी व्यक्ति को सम्यक्त्व और चारित्र प्रदान करना महान उपकार है। ❖

मैंने सुना है कि लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि आत्मज्ञान चौथे आश्रम में प्राप्त होता है। लेकिन जो लोग इस अमूल्य वस्तु को चौथे आश्रम तक मुल्तवी रखते हैं, वे आत्मज्ञान प्राप्त नहीं करते, बल्कि बुढ़ापा और दूसरा, परंतु दयाजनक बचपन पाकर पृथ्वी पर भार-रूप बनकर जीते हैं। इस प्रकार का सार्वत्रिक अनुभव पाया जाता है। संभव है कि सन् 1911-12 में मैं इन विचारों को इस भाषा में न रखता, पर मुझे यह अच्छी तरह याद है कि उस समय मेरे विचार इसी प्रकार के थे।

आत्मिक शिक्षा किस प्रकार दी जाए? मैं बालकों से भजन गवाता, उन्हें नीति की पुस्तकें पढ़कर सुनाता, किंतु इससे मुझे संतोष न होता था। जैसे-जैसे मैं उनके संपर्क में आता गया, मैंने यह अनुभव किया कि यह ज्ञान पुस्तकों द्वारा तो दिया ही नहीं जा सकता। शरीर की शिक्षा जिस प्रकार शारीरिक कसरत द्वारा दी जाती है और बुद्धि की बौद्धिक कसरत द्वारा, उसी प्रकार आत्मा की शिक्षा आत्मिक कसरत द्वारा ही दी जा सकती है। आत्मा की कसरत शिक्षक के आचरण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव युवक हाजिर हों चाहे न हों, शिक्षक को सावधान रहना चाहिए। लंका में बैठा हुआ शिक्षक भी अपने आचरण द्वारा अपने शिष्यों की आत्मा को हिला सकता है। मैं स्वयं झूठ बोलूं और अपने शिष्यों को सच्चा बनाने का प्रयत्न करूं, तो वह व्यर्थ ही होगा। डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखा सकता। व्यभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम किस प्रकार सिखाएगा? मैंने देखा कि मुझे अपने पास रहने वाले युवकों और युवतियों के सम्मुख पदार्थपाठ-सा बनकर रहना चाहिए। इस कारण मेरे शिष्य मेरे शिक्षक बने। मैं यह समझा कि मुझे अपने लिए नहीं, बल्कि उनके लिए अच्छा बनना और रहना चाहिए। अतएव कहा जा सकता है कि टॉल्स्टॉय आश्रम का मेरा अधिकतर संयम इन युवकों और युवतियों की बदौलत था।

—महात्मा गांधी

आचार्य भिक्षु—गण में रहूं निरदाव अकेलो

मुनि कुमुदकुमार

□□□

दुनिया उसी को याद करती है, जो दूसरों के लिए कुछ करता है। जन्म से कोई व्यक्ति बड़ा नहीं होता, बड़ा होता है अपने विशिष्ट व्यक्तित्व और कर्तृत्व से। आचार्य भिक्षु ने अपने कर्तृत्व से जो अमिट रेखाएं खींची, वे हजारों-हजारों लोगों के लिए जीवन की पथ-प्रदर्शक बन गईं। आचार्य भिक्षु ने अपने समय के धार्मिक समाज में व्याप्त मिथ्या मान्यताओं, रूढ़ धारणाओं के अंधकार को मिटाया और ज्ञान की एक नई रोशनी बिखेरी। उन्होंने विभिन्न प्रकार की मान्यताओं एवं धार्मिक अवधारणाओं के संदर्भ में स्पष्ट दृष्टि दी। उसकी रोशनी से धार्मिक समाज को नया दिशा-दर्शन उपलब्ध हुआ। उन्होंने आध्यात्मिक एवं सामाजिक धरातल की भिन्नता का जो चिंतन दिया, वह अपने-आप में विशिष्ट था। तेरापंथ के आद्यप्रवर्तक होने पर भी उनका चिंतन संपूर्ण मानव जाति के लिए कल्याणपरक था।

अनुशासन के पुरोधा पुरुष

आचार्यश्री भिक्षु ने उस समय की स्थिति को गहराई से देखा-परखा। उन्हें लगा, धर्मसंघ में अनुशासन, मर्यादाओं का होना नितांत जरूरी है। जब तक साधक साधना के सर्वोच्च शिखर तक नहीं पहुंच जाता, तब तक अनुशासन का पालन अनिवार्य है। अनुशासन से आत्मानुशासन पैदा होता है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर आचार्य भिक्षु ने धर्मसंघ में अनुशासन का निर्माण किया। संविधान बनाया। सबसे पहले उन मर्यादाओं का स्वयं ने पालन किया तथा दूसरों को प्रेरित किया। उन्होंने अनुशासन को किसी पर थोपा नहीं, क्योंकि थोपा हुआ अनुशासन कभी कारगर नहीं होता। मर्यादाओं को बनाते समय उन्होंने अपने सहवर्ती संतों के चिंतन व विचारों को भी महत्त्व दिया। मर्यादाओं के निर्माण में अनाग्रही दृष्टिकोण रखते हुए लिखा—भविष्य में आने वाले आचार्य यदि चाहें तो इन मर्यादाओं में संशोधन, परिवर्तन एवं संवर्धन कर सकते हैं।

आज के समय में अनुशासन की प्रणाली क्षीण हो रही है। व्यक्ति स्वच्छंदता-भरा जीवन जीना चाहता है। व्यक्ति सोचता है—मेरा भी अपना चिंतन है, इच्छाएं हैं। मैं अपने ढंग से जीना चाहता हूं। मैं क्यों दूसरों

> “
>
> *स्वामीजी सामूहिकता का जीवन जीते हुए भी भीतर से सजग थे, निर्लिप्त थे। न उन्हें संघ से आसक्ति थी, न शरीर से और न ही विचार से। भयंकर गर्मी में भी नदी की बालू रेत में आतापना लेते, साधना की कसौटी पर स्वयं को साधते। कबीर के एक पद—'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया'—की तरह ही आचार्य भिक्षु ने भी आचारप्रवणता, सिद्धांतवादिता के प्रसंग में कोई भी विकल्प नहीं रखा।*

पावन जन्मोत्सव
9 जुलाई
अभिवंदना

की गुलामी में रहूं! इसी चिंतन के कारण समस्याएं खड़ी हो रही हैं। कोई भी परिवार, समाज, सभा-संस्था बिना अनुशासन, संगठन के सुव्यवस्थित रूप से नहीं चल सकते। कायदे-कानून भी कई बनते हैं, परंतु सरेआम उनकी भी धज्जियां उड़ाई जाती हैं। जब तक नियम-कानून, अनुशासन के प्रति आस्था नहीं जगती, तब तक उनका पालन नहीं हो सकता। तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्यश्री भिक्षु द्वारा खींची हुई अनुशासन की रेखा का आज भी अक्षरशः पालन किया जाता है।

श्रमनिष्ठा

श्रम मनुष्य के विकास की पहचान है। सुविधावादी मनोवृत्ति के कारण वर्तमान में व्यक्ति श्रम के मूल्य को भूलता जा रहा है। आचार्यश्री भिक्षु ने श्रम को बहुत महत्त्व दिया। पुरुषार्थ से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है और मानसिक प्रसन्नता भी रहती है। आहार, वस्त्र और आवास मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं। पर, आचार्य भिक्षु को अपेक्षित मात्रा में वे उपलब्ध न हो पाईं, पर उनके चेहरे पर सदा प्रसन्नता ही झलकती रही। सतहत्तर वर्ष की अवस्था होने पर भी वे अपना कार्य स्वयं करते रहे। जबकि अनेक सुविनीत शिष्य उनकी सेवा में सदैव तत्पर रहते थे। आचार्य भिक्षु पाली प्रवास कर रहे थे। रात्रिकालीन प्रवचन की समाप्ति के बाद सारी जनता अपने घर चली गई। तब विजयचंदजी पटवा अपने साथी के साथ आचार्य भिक्षु के पास आए और बोले, हम आपसे चर्चा करना चाहते हैं। आचार्य भिक्षु ने संतों से कहा—'तुम सो जाओ, मैं इनसे चर्चा करूंगा।' स्वामीजी पट्ट पर विराज गए, वे दोनों खड़े-खड़े चर्चा करने लगे। तत्त्व चर्चा में इतना रस आने लगा कि वे आचार्य भिक्षु के चरणों में बैठ गए और तत्त्व को गहराई से समझने लगे। चर्चा करते-करते पश्चिम रात्रि का अंतिम प्रहर चालू हो गया। तत्त्व को समझा और गुरु धारणा स्वीकार कर अपने गंतव्य की ओर चले गए। आप एक-एक व्यक्ति को समझाने के लिए इसी तरह रात्रि-जागरण करते। प्रतिक्रमण करने का समय हो गया, यह जानकर आचार्य भिक्षु ने संतों को उठाया—संतों उठो! प्रतिक्रमण करने का समय हो गया। संत उठे और आचार्य भिक्षु से पूछा, आप कब विराज गए? आचार्य भिक्षु ने मंद-मंद मुस्कराते हुए कहा—'यह पूछो कि मैं सोया कब?' आश्चर्यचकित होकर पूछा—तो क्या आप सारी रात चर्चा ही करते रहे? आचार्यश्री ने कहा—जब किसी को सम्यक्-दृष्टि बनाते हैं या किसी का कल्याण होता है तो रात्रि को जागना भी आनंद देने वाला है।

आचार्यश्री भिक्षु ने श्रम को भार न मानकर निर्जरा का साधन माना और आत्मकल्याण की दिशा में आगे बढ़ते रहे, दूसरों को प्रेरित करते रहे।

अनासक्त योगी

योगी का अर्थ ही होता है कंचन और कामिनी का त्यागी, अनासक्ति का जीवन जीने वाला। आसक्ति दुख की ओर ले जाती है। आचार्य भिक्षु की जीवनशैली, आचार-विचार, सभी अनासक्तिपरक थे। आचार्य भिक्षु ने प्रत्येक क्रिया में महावीर-वाणी को सामने रखा। संघबद्ध साधना करते हुए भी वे उसमें लिप्त नहीं थे, उन्होंने लिखा—**गण में रहूं निरदाव अकेलो**। स्वामीजी सामूहिकता का जीवन जीते हुए भी भीतर से सजग थे, निर्लिप्त थे। न उन्हें संघ से आसक्ति थी, न शरीर से और न ही विचार से। भयंकर गर्मी में भी नदी की बालू रेत में आतापना लेते, साधना की कसौटी पर स्वयं को साधते। कबीर के एक पद—'ज्यौं की त्यौं धर दीनी चदरिया'—की तरह ही आचार्य भिक्षु ने भी आचारप्रवणता, सिद्धांतवादिता के प्रसंग में कोई भी विकल्प नहीं रखा।

कुशल कवि एवं सफल साहित्यकार

कबीर, तुलसी, नानक, जायसी आदि संत कवियों की परंपरा-गणना में आचार्य भिक्षु का नाम भी आता है। उन्होंने अपने सिद्धांत, दर्शन, विचार को साहित्य के माध्यम से जनता तक प्रेषित किया। उनकी काव्यशैली ने जनता को जीवन और दर्शन का सही दृष्टिकोण दिया। वे भाषा के अनुगामी नहीं बने, भाषा उनकी अनुगामी बनी। राजस्थानी भाषा के वे समृद्ध कवि एवं साहित्यकार थे। उनकी कलम ने अड़तीस हजार पद्य (लगभग) साहित्य की रचना की। इतिहास, दर्शन, आचार-विचार, शिक्षा एवं तत्त्वबोध, आख्यान की जन-भोग्य सामग्री उन्होंने समाज को दी।

दूरद्रष्टा संविधान निर्माता

आचार्य भिक्षु के दूरदर्शी चिंतन ने तेरापंथ के संविधान का निर्माण कर एकतंत्र में लोकतंत्र की स्थापना की। संविधान का निर्माण करते समय सबका चिंतन जाना-समझा एवं अपनी सूझबूझ से संविधान बनाया। आहार, विहार, वस्त्र आदि सभी मर्यादाओं का निर्माण उस समय किया, जब खाने को पूरा आहार नहीं मिलता था, पहनने

को वस्त्र एवं रहने को स्थान नहीं मिलता था। संघ की सुरक्षा एवं एकता के लिए बनाया गया संविधान बिना किसी भय या प्रलोभन के सबने स्वीकार किया। संविभाग एवं समानता का जो सूत्र उन्होंने दिया, वह आदर्श समाजवाद का प्रतीक है। उन्होंने अध्यात्म व व्यवहार का तालमेल बनाए रखा। विकास के लिए सबको अवसर प्रदान किया, तो गलती के परिष्कार के लिए, प्रायश्चित्त के लिए भी जगह बनाई। सबको स्वतंत्रता से जीने का अधिकार देकर भी, उनकी बागडोर एक नेतृत्व की परंपरा को सौंप दी। जहां आज सत्ता के लिए क्या-कुछ नहीं होता, वहीं तेरापंथ धर्मसंघ में पद-प्राप्ति या अपना शिष्य बनाने का कभी सपना भी नहीं आता। अहंकार और ममकार के विसर्जन का प्रतीक तेरापंथ धर्मसंघ आज सबके लिए आदर्श बना हुआ है। ❖

मेरा यह विश्वास है कि भारत की कमजोरी का प्रमुख कारण उसकी दासता नहीं है, न गरीबी और न आध्यात्मिकता अथवा धर्म की हीनता, बल्कि वह है विचार-शक्ति का ह्रास, ज्ञान की मातृभूमि में अज्ञान का विस्तार। सर्वत्र मैं विचार करने की अयोग्यता अथवा अनिच्छा—विचार की असमर्थता या विचार-भीति देखता हूं। मध्य युग में जो भी रहा हो, इस समय यह प्रवृत्ति महान अवनति का लक्षण है। मध्य युग तो एक रात थी, अज्ञानी आदमी की विजय का समय; आधुनिक विश्व ज्ञान के आदमी की विजय का समय है। जो भी अधिक विचार करके, अधिक खोज करके, अधिक श्रम करके विश्व के सत्य को अधिक थाह और सीख सकेगा वही अधिक शक्ति प्राप्त करेगा। यूरोप की ओर देखो तो तुम्हें दो चीजें दिखाई देंगी; विचार का एक व्यापक असीम सागर और एक विशाल और तीव्र, पर अनुशासित बल की क्रीड़ा। यूरोप की सारी शक्ति वहीं निहित है। इसी शक्ति के बल पर वह विश्व को निगल सका, हमारे पुरातन तपस्वियों की तरह, जिनकी शक्ति से ब्रह्मांड के देवता भी भयभीत रहते थे, दुविधा में बने रहते और अधीनता स्वीकार करते थे। लोग कहते हैं कि यूरोप विनाश के जबड़ों में तेजी से घुसा जा रहा है। मैं ऐसा नहीं समझता। ये सारी क्रांतियां, ये सारी उखाड़-पछाड़ नए सृजन की प्राथमिक अवस्थाएं हैं। अब भारत को देखो; कुछ एकाकी दिग्गजों को छोड़कर, सर्वत्र तुम्हारा 'सीधा आदमी' है, वह तुम्हारा औसत आदमी जो न सोचेगा और न सोच सकता है, जिसमें जरा-सी भी शक्ति नहीं है, बस एक क्षणिक उत्तेजना है।... अंतर यहां पर है। पर यूरोप की शक्ति और विचार की एक विघातक सीमा है। जब वह आध्यात्मिकता के क्षेत्र में प्रवेश करता है तो उसकी विचार-शक्ति काम करना बंद कर देती है। वहां यूरोप को सब-कुछ एक पहेली, धुंधली तत्त्व-मीमांसा, योगिक विभ्रम जैसा दिखाई देता है—'वह अपनी आंखें मलता है, जैसे कि धुएं में, पर कुछ भी साफ-साफ नहीं देख पाता।' तो भी अब यूरोप में इस सीमा को भी लांघने का महान प्रयास हो रहा है। हम अपने पूर्वजों को धन्यवाद दें कि हमारे पास आध्यात्मिक समझ है और जिसमें भी यह समझ है, उसकी पहुंच के भीतर ऐसा ज्ञान है, ऐसी शक्ति है कि एक ही फूंक में वह यूरोप की सारी महान शक्ति को तिनके की तरह उड़ा सकता है। किंतु उस शक्ति को पाने के लिए भी शक्ति चाहिए। पर हम तो शक्ति के पुजारी ही नहीं हैं; हम तो सुगमता के पूजक हैं।... हमारी सभ्यता अस्थिपंजर बन गई है, हमारा धर्म बाह्य बातों का मताग्रह, हमारी आध्यात्मिकता प्रकाश की एक फीकी टिमटिमाहट अथवा नशे की एक क्षणिक तरंग। जब तक ऐसी परिस्थिति बनी रहती है तब तक भारत का कोई स्थाई पुनरुत्थान असंभव है।

—श्री अरविंद

एक शुरुआत

स्वप्ना दत्ता

रेखा कपूर स्थानीय स्कूल में जूनियर टीचर है और पहली बार इस स्कूल में आई है। दूसरी अध्यापिकाओं से वह कुछ अलग ही स्वभाव की है। आज कक्षा में घुसते ही उसने शांत बैठे सभी बच्चों पर एक नजर डाली और 'मुन्नूलाल कहां है?' पूछा।

बच्चों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। हरीश मुंह छिपाकर हंसा। उसने छोटू को कुहनी मारी। किट्टू ने रानी की ओर देखकर सिर हिलाया। अधिकतर बच्चों को मुन्नू के बारे में सब-कुछ पता था, लेकिन कोई भी बताने को तैयार नहीं था।

रेखा की बेसब्री बढ़ रही थी। चिल्लाती-सी बोली, 'बताओ, वह कहां है? हर रोज इसी समय वह गायब हो जाता है और छुट्टी होने के ठीक पहले लौटता है। आखिर वह जाता कहां है?'

रेखा ने फिर पूरी कक्षा को एक नजर से देखा। लगा कि जैसे सभी बच्चों के चेहरे भावहीन-से हो गए हैं।

"

रेखा को यह सुनकर कुछ अजीब-सा लगा। उसे लगा कि पता करना चाहिए, आखिर मामला क्या है? घंटी बजी, गणित की मैडम कक्षा में आ गईं। रेखा कक्षा से बाहर निकल गई। उसे पता था, पार्क कहां है। स्कूल से पार्क की दूरी बहुत कम थी। अतः कुछ ही मिनटों में रेखा पार्क के अंदर पहुंच गई। बहती हुई कृत्रिम नदी के किनारे कोई सिमटा-सा बैठा था। बहते हुए पानी को एकटक देखे जा रहा था। मैला-कुचैला-सा स्कूल का बस्ता उसके पास पड़ा था। वह और कोई नहीं, मुन्नू ही

बालकथा

पीछे वाली बेंच पर बैठने वाला मिठू कुछ कहने ही वाला था, कि बगल में बैठे सोनू ने इस तरह पसलियों पर कोहनी मारी कि बेचारा चुप ही रह गया।

इस कक्षा के अधिकांश बच्चे स्कूल के पीछे वाली झुग्गी बस्ती से आते हैं। किसी बड़े के कक्षा में न रहने पर वे अकसर आपस में झगड़ते रहते हैं। पर, इन बच्चों में एक खास बात यह नजर आई कि वे आपस में एक-दूसरे के प्रति बहुत वफादार हैं—स्कूल में भी और स्कूल से बाहर भी। शायद इसीलिए मुन्नू के पिता शंभु को इस बात का पता बिलकुल नहीं लगा कि उसका बेटा कुछ कालांशों में रोज ही गैर-हाजिर रहता आ रहा है। पिता शंभु एक बड़ी-सी इमारत के निर्माण-कार्य में मजदूरी करता है। परिवार में काफी सदस्य हैं और उन सबके लिए आम जरूरतें पूरी करना आसान नहीं है। शंभु व कमला दोनों ही अनपढ़ हैं, लेकिन कमला अपने

बच्चों को अपने जैसा बिलकुल भी नहीं बनने देना चाहती।

टीचर रेखा ने फिर अपना प्रश्न दोहराया। आखिरकार पम्मी खड़ी हुई और बोली—'मैं.... हम....मुन्नू से कहेंगे कि अब न जाया करे। वह समझता है कि उसके जाने का किसी को पता नहीं चलता।'

'तुम लोग क्या हमें मूर्ख समझते हो? रोज होने वाली बात का भला पता कैसे नहीं चलेगा?' रेखा ने तेज स्वर में कहा।

'यह बात ठीक है, लेकिन हर कोई परवाह नहीं करता'—इस बार मिठू बोला—'पहले तो कभी किसी ने नहीं पूछा।'

'आपके आने से पहले तो किसी को पता ही नहीं चला'—रानी भी बोली।

रेखा ने अपने होंठ भींच लिए। वह इस स्कूल में नई थी। हाल ही में विश्वविद्यालय से अपनी पढ़ाई पूरी कर निकली थी। उसे कई अच्छी नौकरियों के प्रस्ताव भी मिले, किंतु रेखा ने इसी स्कूल में काम करना पसंद किया। इस भीड़भरे इलाके के उपेक्षित बच्चों के लिए वह कुछ करना चाहती थी। जब वह इस स्कूल में आई थी, तब उसके साथ वाली अध्यापिकाओं ने जो बातें कही थीं, वे रेखा को आज भी याद हैं।

'इन बच्चों के लिए अपनी नींद खराब मत करो। ये किसी काम के नहीं हैं'—एक ने कहा था।

'तीन या चार बार फेल होने के बाद ये स्कूल छोड़ देंगे और फिर जेब काटेंगे, नशीले पदार्थों का धंधा करेंगे, घरों या दुकानों में काम करेंगे।'

'ये जैसे हैं, उससे अधिक कुछ भी नहीं बन सकते'—तीसरी बोली।

इन लोगों के दृष्टिकोण और उदासीन रवैये को देखकर रेखा को बेहद दुख हुआ था।

'अगर बेहतर बनने में इन बच्चों की हम मदद नहीं कर सकते तो इन्हें पढ़ाने से क्या लाभ है?' उसने पूछा, 'आखिर हम यहां हैं किसलिए?'

'क्योंकि यहां कोई झंझट नहीं है और वेतन भी अच्छा मिलता है'—उनमें से एक ने उत्तर दिया।

'हमारे ऊपर हुकुम चलाने वाला भी कोई नहीं है'—दूसरी हंसी।

'इन झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले बच्चों के लिए सिर खपाना मूर्खता है'—तीसरी का कहना था।

'मैं इन बातों से सहमत नहीं हूं'—रेखा ने दृढ़ता से कहा था।

'तुम अभी नई आई हो, रेखा। बहुत जल्द तुम्हारा स्वर भी बदल जाएगा।' और सभी एक साथ हंस दी थीं।

× × × ×

मुन्नू इस समय अपने प्रिय गुप्त स्थान की ओर बढ़ा चला जा रहा था। उसका गुप्त स्थान था—बड़ा व लंबा पार्क, जिसमें कई-सारे फव्वारे लगे थे। एक कृत्रिम नदी एक किनारे से दूसरे किनारे तक बह रही थी। नदी का तल नीला दिखता था और इसके दोनों तटों को कोमल हरी घास से सुंदर ढंग से हरा-भरा बनाया गया था। मुन्नू को यह संसार की सबसे प्यारी जगह लगती थी। उस पार्क में जाते ही वह कोमल हरी घास पर लेट गया। काश! उस गंदी और भीड़भरी झुग्गी के बजाय वह यहीं रह पाता। इन लंबे सुनहरे अमलतास व सुर्ख लाल खिले हुए गुलमोहर के पेड़ों के नीचे वह कितनी आजादी से सांस ले सकता है!

चिड़ियों का चहचहाना सुनते रहना और एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर फुदकती हुई गिलहरियों को देखते रहना कितना आनंददायक है। ये सब मुन्नू को यहां से बहुत दूर, अपने गांव की याद दिलाते थे। गांव में अब सिर्फ उसके दादा-दादी रहते हैं।

मुन्नू ने अपनी आंखें बंद कर लीं। वह उन दिनों को याद करने लगा, जो अब एकदम अजनबी और अवास्तविक लगने लगे थे। गेहूं, चने और मक्के के लंबे-चौड़े लहलहाते खेत; जहां उसके पिता, ताऊ, चाचा और दादाजी सभी मिल-जुलकर काम करते थे। नीची छत वाला घर था, जिस पर फूलों से भरी बेलें

लदी रहती थीं, और ऊपर खुला-साफ नीला आकाश था। उसे इन सबकी बहुत याद आती। इसीलिए वह रोज इस 'पार्क' में आता था। उसे लगता, जैसे यह 'पार्क' उसे हर समय पुकारता रहता है। वह स्कूल की आधी छुट्टी होते ही यहां भाग आता था। इस बात की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया था। भीड़भरी उस कक्षा में यदि एक बच्चा कम हो भी तो कोई शिक्षिका इस बात की परवाह नहीं करती थी। अधिकतर शिक्षिकाएं कक्षा में बैठकर या तो स्वेटर बुनती रहतीं, या बच्चों को कुछ काम दे निश्चिंत हो जातीं। वह काम तो वे शायद ही कभी जांचती होंगी! यह 'पार्क' मुन्नू के लिए स्वर्ग के समान है।

'तुम्हें अपना गांव इतना प्यारा है तो यहां क्यों आए?'—मुन्नू के दोस्त उससे प्रायः यह पूछा करते।

'सूखा पड़ जाने के कारण'—मुन्नू ने बताया—'सारे पैसे खत्म हो गए थे और बाऊजी को बहुत-सा कर्ज चुकाना था। उन्हें अपने खेत बेचने पड़े, क्योंकि ताऊजी को अपनी बेटी की शादी के लिए पैसों की जरूरत थी। कुछ बची-खुची जमीन दादाजी ने बुआ के ब्याह के लिए बेच दी थी। घर का खर्च चलाने के लिए बाऊजी को काम ढूंढ़ना ही था।'

'तो, वे तुम लोगों को गांव में छोड़कर यहां अकेले क्यों नहीं आ गए?' यह सवाल होता दोस्तों का।

'उनकी देखभाल के लिए अम्मा को भी आना पड़ा और कमाने में भी उनकी मदद की जरूरत थी....हम गांव में कैसे गुजारा करते?' मुन्नू उत्तर देता।

उसके सभी दोस्त सहमति में सिर हिला देते। आखिर यही कहानी उनकी भी तो थी।

पर, मुन्नू के दोस्तों को शहर में रहने में कोई आपत्ति नहीं थी। उन्हें शहर की चहल-पहल पसंद थी। यहां कुछ-न-कुछ होता ही रहता था। इन बच्चों को हरे खेतों का कोई शौक नहीं था और न ही नीले आकाश का। जिस शहर में वे रहते हैं, वहां का आकाश काला, धूलभरा और थका-सा है। शायद उतना ही थका हुआ, जितने मुन्नू के पिता काम से घर लौटने पर हर रात थके होते हैं।

× × × ×

टीचर रेखा ने पम्मी की ओर देखकर कहा—'तुम मुझे बताओ, वह कहां है? मैं उसे कोई सजा नहीं दूंगी, लेकिन मैं जानना चाहती हूं कि वह कर क्या रहा है?'

सामने की बेंच पर बैठा चिटकू तुरंत खड़ा होकर बोला—'मैडम, मुझे पता है कि मुन्नू कहां है। स्कूल के पीछे वाले पार्क में घास पर लेटा होगा। मुन्नू वहां रोज जाता है।'

'वह वहां किससे मिलने गया है?' रेखा ने हैरानी के स्वर में पूछा।

'किसी से नहीं। अकेला वहां बैठा रहता है और कल्पना करता रहता है कि वह अपने गांव पहुंच गया है। बिलकुल पागल है'—पम्मी ने कहा।

रेखा को यह सुनकर कुछ अजीब-सा लगा। उसे लगा कि पता करना चाहिए, आखिर मामला क्या है? घंटी बजी, गणित की मैडम कक्षा में आ गईं। रेखा कक्षा से बाहर निकल गई। उसे पता था, पार्क कहां है। स्कूल से पार्क की दूरी बहुत कम थी। अतः कुछ ही मिनटों में रेखा पार्क के अंदर पहुंच गई। बहती हुई कृत्रिम नदी के किनारे कोई सिमटा-सा बैठा था। बहते हुए पानी को एकटक देखे जा रहा था। मैला-कुचैला-सा स्कूल का बस्ता उसके पास पड़ा था। वह और कोई नहीं, मुन्नू ही था।

'मुन्नू!' रेखा ने धीरे-से पुकारा। मुन्नू जैसे उछल पड़ा, पर दूसरे ही क्षण उसकी आंखों में डर साफ झलकने लगा।

'मैं तुम्हें यहां डांटने नहीं आई हूं'—रेखा ने उसकी ओर मुस्कराते हुए कहा, 'लेकिन, मैं यह जरूर जानना चाहती हूं कि तुम रोज स्कूल से भागकर यहां क्यों आते हो?'

मुन्नू चुपचाप खड़ा रहा। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे और कहां से बताना शुरू करे।

'बताओ, मुन्नू'—रेखा ने प्यार से कहा।

मुन्नू के होंठ थरथराए। इतने सालों बाद किसी ने इतने प्यार से उससे बात की थी। उसकी आंखों में आंसू भर आए।

'बोलो, मुन्नू'—रेखा ने फिर कहा।

भावनाएं एक साथ फूट पड़ीं। खुले खेतों, साफ नीले आकाश, पेड़ों, पक्षियों, गिलहरियों, नेवलों, फूलों से भरी बेलों और फलों से लदे पेड़ों के लिए मुन्नू की लालसा शब्दों में जाहिर होने लगी। ये सब कभी उसके जीवन के अभिन्न अंग थे। वह नदी जिसमें वह अठखेलियां करता था, वह पुराना बरगद का पेड़ जिस पर उसका झूला टंगा था, दादाजी की मीठी-मीठी कहानियां, दादी-मां के पकवान और वे सारे त्योहार—जिनमें पूरा गांव हिस्सा लेता था, भूसे के ढेर पर लेटकर चांदनी रात का आनंद और ढेर-सारे उसके दोस्त और चचेरे भाई-बहन—सब पीछे छूट गए थे। इस पार्क में आकर वह अपनी इसी खोई हुई दुनिया को तलाशता है।

'लेकिन, तुम इसके लिए स्कूल क्यों छोड़ते हो?'—रेखा ने पूछा—'स्कूल से छुट्टी हो जाने पर ही यहां क्यों नहीं आते?'

'छुट्टी के बाद कैसे आ सकता हूं? उसके बाद तो घर जाकर बहुत-सा काम करना पड़ता है'—मुन्नू ने हकलाते हुए कहा—'मुझे दूसरे बच्चों के साथ ही वापस जाना होता है। काम में अम्मा की मदद करनी पड़ती है।'

'तुम्हारी बात मैं समझती हूं, पर इस तरह तुम स्कूल से भाग नहीं सकते'—रेखा ने मुन्नू के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—'क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे मां-बाप कड़ी मेहनत से कमाया हुआ पैसा तुम्हारी पढ़ाई के लिए खर्च कर रहे हैं, कि तुम पढ़-लिख जाओ और बड़े होकर अच्छा जीवन जिओ।'

'यह तो मैंने सोचा ही नहीं था'—मुन्नू सिर झुकाते हुए बोला—'मैं आगे से ऐसा नहीं करूंगा।'

'अच्छा बताओ, तुम बड़े होकर क्या करना चाहते हो?'—रेखा ने फिर प्यार से पूछा।

'मैं वापस गांव जाऊंगा और वहीं खेतों में काम करूंगा'—कहते हुए मुन्नू की आंखों में चमक आ गई। फिर अचानक जैसे यह चमक गायब हो गई—'मैं तो भूल ही गया था कि खेत अब हमारे नहीं रहे।'

'मैं तुम्हें बताती हूं'—रेखा ने कहा—'शहर से बाहर ही मेरे चाचा का एक बहुत बड़ा फार्म है। बहुत-सुंदर जगह है। वहां खेत है, पेड़, चिड़ियां और बहुत सारे जानवर हैं। किसी दिन मैं तुम्हें वहां ले चलूंगी। हो सकता है, छुट्टियों में तुम वहां कुछ मदद भी कर सको और काम सीख सको। एक बार तुम स्कूल पास कर लो, फिर मेरे चाचा अपने फार्म में तुम्हें काम पर रख लेंगे।'

'अरे, ऐसा हो जाए तो सचमुच बहुत अच्छा रहे'—मुन्नू की आंखों में चमक वापस आ गई थी।

'लेकिन, इसके लिए पहले तुम्हें कड़ी मेहनत करके 'बोर्ड' की परीक्षा पास करनी होगी'—रेखा ने मुन्नू को समझाया।

'मैं मेहनत करूंगा'—मुन्नू दृढ़ निश्चय दिखाते हुए बोला।

× × × ×

रेखा जानती थी कि उसकी साथी अध्यापिकाएं क्या कहेंगी।

'जिंदगी इतनी आसान नहीं!'—वे रेखा को समझाएंगी—'एक मुन्नू को तुम काम दिलाने में मदद कर सकती हो, किंतु सारे शहर में बसे उन हजारों मुन्नुओं को कौन काम दिलाएगा? क्या तुम सभी के लिए काम ढूंढ़ पाओगी?'

'शायद वे ठीक सोच रही हों'—मुन्नू के साथ लौटते हुए रेखा सोच रही थी, 'किंतु हर काम की शुरुआत कहीं-न-कहीं से तो होती ही है। और, यह भी एक शुरुआत ही तो है।' ❖

GYANMANDIR
SHRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba
Phone

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए
जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिण्टर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

Oswal Tent Products

127/22-T, Block Vinoba Nagar, Govind Nagar, KANPUR 208014

Phones : (Shop) : 0512-2611745, (Resi.) 2642480

Mob. : 9839037011

Manufacturer and Supplier of all kind of Tent House Items
Cotton Cloths, Grey & Waterproof Canvas

Speciality : Shamiyana, Rang Mahal, White House, Kannats, Fancy Cealing Pandal, Tent Chairs, Tent Tables, Jaimala, Folding Bed, Gate, Stall, Durries, Wash Basin etc.

प्रेषण दिनांक 17 जुलाई, 06 • Licensed to Post without Pre-Payment Under Licence No. RJ/WR/PP/Bikaner13/2004
जैन भारती, जुलाई, 2006 भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/06-08

With best compliments from :

THE KALYANI TEA CO. LTD.

**MAKERS OF FINEST QUALITY OF
GREEN / ORTHODOX / CTC
TEAS**

Head Office :
16, Bonfield Lane, KOLKATA 700001
Phone & Fax : (033) 2242-6141

Garden :
Kenduguri Tea Estate
P.O. Rajgarh, Dist. Dibrugarh, Assam
Phone : (03754) 276646 Fax : (03754) 276627

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779
नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।